3457

वितस्ता

'प्रेमचन्द'
विशेषांक

सम्पादिका
प्रो० ज़ौहरा अफ़ज़ल

हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय
श्रीनगर–190006

3457

'प्रेमचन्द'

विशेषांक

सम्पादिका
प्रो० ज़ौहरा अफ़ज़ल

हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय
(राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद द्वारा 'ए' ग्रेड)
श्रीनगर–190006

सम्पादक मण्डल : डॉ० दिलशाद जीलानी

डॉ० रुबी जुत्शी

डॉ० ज़ाहिदा जबीन

डॉ० मज़हर अहमद खाँ

प्रिन्टर्स : आर्याना पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीव्यूटर्स, नई दिल्ली

संपादकीय

इस वर्ष के आरंभ में ही यह दु:खद समाचार मिला कि हिन्दी विभाग कश्मीर वि० विद्यालय के पूर्व अध्यक्ष एवं कला-सकांचाध्यक्ष प्रो० रमेश कुमार शर्मा हमारे बीच नहीं रहे। अप्रैल 2008 को उनका निधन अपने घर आगरा में हो गया। प्रो० शर्मा ने केवल हिन्दी विभाग को विकसित करने में ही अपना योगदान नहीं दिया बल्कि कश्मीर में हिन्दी के प्रचार-प्रसार के लिए बहुत कार्य किया। हिन्दी विभाग उनके इस योगदान को कभी भुला नहीं सकेगा। शर्मा जी एक अच्छे अध्यापक ही नहीं बल्कि एक स्नेहमयी मित्र और सबसे बढ़कर एक अच्छे व्यक्ति थे। अपने छात्रों और सहकर्मियों के लिए उनके मन में अथाह प्रेम था। हिन्दी विभाग अपने इस गुरु को श्रद्धांजलि सुमन अर्पित करता है।

इधर जब यह अंक प्रेस को जा रहा था तो एक और दु:ख समाचार हमें मिला कि एक और सहयोगी गुरु प्रो० भूषण लाल कौल भी 16 फरवरी 2009 को चल बस हमें उन्हें भी हिन्दी विभाग कश्मीर वि० विद्यालय की ओर से श्रद्धांजलि के पुष्प अर्पित करते हैं।

सम्पादिका

अनुक्रमाणिका

1.	वर्तमान युग में प्रेमचन्द की प्रासंगिकता – प्रोफेसर (डॉ.) विनोद तनेजा	1-6
2.	समसामयिक युग में प्रेमचन्द की प्रासंगिकता – प्रोफेसर ज़ौहरा अफ़ज़ल	7-29
3.	समसामयिक युग में प्रेमचन्द की प्रासंगिकता – डॉ. प्रत्यूष गुलेरी	30-41
4.	नाटककार प्रेमचन्द की प्रासंगिकता – डॉ. परमेश्वरी	42-53
5.	प्रेमचन्द की प्रासंगिकता – डॉ. चंचल शर्मा (डोगरा)	54-65
6.	वर्तमान युग में प्रेमचन्द के उपन्यासों की प्रासंगिकता – डॉ. दिलशाद जीलानी	66-77
7.	हिन्दी शोध और प्रेमचन्द – मोनिका तनेजा	78-117
8.	वर्तमान युग में प्रेमचन्द की प्रासंगिकता – रुबी ज़ुत्थी	118-122
9.	प्रेमचन्द– एक कथाकार – डॉ. ज़ाहिदा जबीन	123-130
10.	प्रेमचन्द की रचनाओं में वर्णित समाज – मोहम्मद मेराज अहमद	131- 138

वर्तमान युग में प्रेमचन्द की प्रासंगिकता

प्रोफेसर (डॉ.) विनोद तनेजा

प्रेमचन्द भारतीय परम्परा के ऐसे लेखक हैं जिनके बारे में जानने की इच्छा सिर्फ प्रेमचन्द पर शोध करने वालों के बीच में ही नहीं, बल्कि एक सामान्य संवेदनशील पाठक के मन में भी उतनी ही गहरी है, जितनी शोध कर्त्ताओं के मन में। आज बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में लेखक को इक्कीसवीं शती के पहले दशक में जो हम याद कर रहे हैं तो कोई ऐसी बात तो उसमें ज़रूर है, जो हमें उसकी ओर खींच रही है, वरना "वह न तो कोई बड़े राजनेता थे और न ही कोई ऐसे समाज-सुधारक जिन्होंने कोई बड़ा आन्दोलन चलाया हो।" वे तो सिर्फ एक कथाकार लेखक ही थे पर थे एक ऐसे लेखक जो किसी एक भाषा, क्षेत्र या जाति के ना होकर सम्पूर्ण भारतीयता के लेखक रहे हैं। एक ऐसे बड़े लेखक ने अपने समय को एक ऐसा रास्ता दिया जिससे आगे पीढ़ी-दर-पीढ़ी को एक नया रास्ता मिल गया। उन्होंने अपने लेखन द्वारा अपने वक्त में जो कुछ दिया, वह इतना खरा था कि आज ही नहीं बल्कि आने वाला वक्त भी मुड़-मुड़कर उससे सलाह लेकर आगे बढ़ेगा।

प्रेमचन्द ने अपने लेखन से भारतीय स्वाधीनता संघर्ष में जो भूमिका निभाई उसका प्रमाण आज से एक शती पूर्व 1907 में लिखी गई, उनकी कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रत्न' है जिसके कारण उनका 'सोजे वतन' जब्त हुआ। उसकी प्रतियों की होली जलाई गई। किताबों के ढेर के पास खड़ा एक अर्दली किताबों को कबूतरों की तरह उड़ा-उड़ा कर आग में फेंक रहा था। भीड़ लगी थी और भीड़ से हट कर खड़ा एक 29 वर्षीय एक व्यक्ति पत्थर के बुत की तरह सब कुछ देख रहा था। अंग्रेज कलेक्टर ने कड़कती आवाज में उसे सुनाया– "अगर कोई और सरकार होती तो वह जरूर तुम्हारे हाथ काट देती।"

आज से सौ वर्ष पूर्व की इस कहानी 'दुनिया का सबसे अनमोल रतन' में दुनिया की सबसे अधिक कीमती चीज खून की उस बूंद को माना गया था, जो मातृभूमि की रक्षा के लिए गिरती है। इस कहानी के साथ इस संग्रह में शेख मखमूर, यही मेरा वतन है, शोक का पुरस्कार (सिल-ए मातम), सांसारिक प्रेम और देश प्रेम (इश्क-ए-दुनिया और हुब्बे-वतन) कहानियां भी थी। पर पहली कहानी पर ही अधिक ऐतराज किया गया। यह ऐतराज चाहे जैसा भी रहा हो पर साहित्य जगत् के लिए वरदान बना क्योंकि इसी ने धनपत राय / नवाब राय की जगह साहित्य को 'प्रेमचन्द' दिया।

प्रेमचन्द पिछली सदी के आरम्भ के एक पराधीन देश का एक ऐसा कथाकार रहे, जिन्होंने साम्राज्यवादी दमन के विरोध तक ही अपने को सीमित न रखते हुए, अपने वक्त के सामन्ती समाज में किसान के उत्पीड़न की भी जोरदार खिलाफत की। अपने समय के अज्ञानग्रस्त व रूढ़िवादी समाज के हाथों मार खाते निरीह जन के दर्द को भी उन्होंने

समझा। साथ ही मर्दवादी समाज में मर्द को औरत पर जुल्म ढाते देखा, जातिवाद के अन्तर्गत दलित दमन को बगावत की हद तक उगार दिया - सही मायनों में वो मूक और अपढ़ आवाम की आवाज़ बने।

31 जुलाई, 1880 के बनारस के लमही में आनंदी देवी और अजायब लाल के घर पैदा हुए प्रेमचन्द 'आवाज-ए-खल्क' नाम के उर्दू अखबार में 8 अक्टूबर, 1903 से 1 फरवरी 1905 तक लगातार प्रकाशित होने वाले 'असरारे मआबिद' उपन्यास के माध्यम से हिन्दी साहित्य जगत में आये। तब से 8 अक्टूबर 1936 तक वे निरन्तर साहित्य से जुड़े रहे। 14 पूर्ण और एक अधूरा कुल पन्द्रह उपन्यास और 300 के लगभग कहानियां, 'कुछ विचार' तथा 'साहित्य का उद्देश्य' निबंध; कर्बला, प्रेम की वेदी, संग्राम नाटक-कथा के अनुवादक तथा हंस आदि के संपादक के रूप में प्रेमचन्द ने जो कुछ भी हिन्दी / उर्दू साहित्य को दिया उसमें किसी न किसी रूप में भारतीय समाज ही रचा पचा है। इसीलिए वो साहित्य की अमूल्य थाती हैं।

प्रेमचन्द के कथा-साहित्य का समय उपनिवेशवादी शोषण और दमन का समय था। राजनैतिक स्तर पर गुलाम तथा बौद्धिक स्तर पर पिछड़े होने के कारण भारतीय लोग दुनिया में पिछड़े हुए थे। ऐसी विषमावस्था में प्रेमचन्द ने मानवीय-जीवन को जो संदेश दिया, वो उनकी सामाजिकता के भाव को दर्शाने में पूरी तरह सफल है। उन्होंने पिछड़े औपनिवेशिक समाज की सच्चाईयों को व्यक्त करने के लिए राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग तथा मध्यवर्ग के जीवन के साथ-साथ शारीरिक मेहनतकश के जीवन को भी देखा। उन्होंने उन सामाजिक शक्तियों को अपने कथा साहित्य का आधार बनाया, जो समाजवादी क्रान्तियों के

आधार बन सकते हैं। पूस की रात, मुक्ति मार्ग, आहुति, कफ़न, रंग-भूमि, कर्म भूमि, गोदान में आया कृषक मज़दूर वर्ग अपनी नयी भूमिका के प्रति सजग होने की कोशिश कर रहा है। घीसू हो या होरी, हल्कू, रूपमणि, मेहता सभी प्रेमचन्द के समाज के विभिन्न स्तरों को प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने उच्च वर्गीय-वर्गीय चरित नायकों के स्थान पर नायक के विकासशील स्वरूप की कल्पना की। प्रेमचन्द ने अपने पात्रों को सहज आत्मीय तथा विश्वसनीय रूप देते हुए हमेशा अच्छाइयों के साथ-साथ उनकी मानवीय कमजोरियों को भी ध्यान में रखा और जो घृणा के पात्र है, उनका भी चरित्र पूरी सावधानी से अंकित किया।

प्रेमचन्द ने भारतीय जनता के स्वप्नों एवं संघर्षों को पहचाना और अपने समाज को अच्छी तरह जाना। उन्होंने 'हमारे पीड़ित समाज में एक नये वर्ग की अगवानी की सूचना दी है।' रामवृक्ष बेनीपुरी जी मानते है कि "जब कुछ शताब्दियों वाद हिन्दी का इतिहास लिखा जाये तो हमारे साहित्य को दो ही भागों में बांटा जाये, एक वह जिसका प्रारंभ 'सरह' से होता है और दूसरा वह जिसका प्रारंभ प्रेमचन्द से होता है।"

प्रेमचन्द का कथा-साहित्य भारत का अपना साहित्य है। भारतीय जमीन की पूरी अस्मिता और जन-सामान्य की गहरी पीड़ा की अनुभूति प्रेमचन्द के साहित्य में हमें मिलती है। इसी कारण उनके साहित्य से हम गौरान्वित ही नहीं होते बल्कि उसमें हमें अपनी सार्थक पहचान के दर्शन होते हैं। उनका कथा-साहित्य आज भी हमारे लिए प्रासंगिक है क्योंकि उसके माध्यम से आज भी संवेदनशील पाठक को शक्ति अनुभव करता है जिससे जीवन और रचना की मूल्यवत्ता, सार्थकता प्राप्त करती है।

प्रेमचन्द ने अपने कथा साहित्य में जिस तरह से छोटे आदमी के

बड़े कद की पहचान करायी है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने अपने समय को अच्छी तरह से पहचान लिया था। अपनी इसी पारखी दृष्टि के कारण वे एक ऐसे शाश्वत लेखक के रूप में हमारे सामने आते हैं, जिसने समाज के वास्तविक सरोकारों को पहचानते हुए जिस रूप में भावी जीवन के लिए संकेत दिये, उनसे सहृदय सामाजिक बहुत कुछ प्रेरणा ले सकने में समर्थ रहा।

प्रेमचन्द की प्रासंगिकता उनकी भाषा विषयक अवधारणाओं से भी स्पष्ट हो सकती है। राष्ट्रभाषा की चिंता उन्हें भी थी। वे ही एक ऐसे साहित्यकार के रूप में उभर कर हमारे सामने आते हैं जिन्होंने 'कौमी भाषा' पर विचार किया और कहा– "राष्ट्रभाषा से हमारा क्या आशय है, इसके विषय में भी मैं आपसे दो शब्द कहूंगां इसे हिन्दी कहिए, हिन्दुस्तानी कहिए या उर्दू कहिए चीज एक है। नाम से हमारी कोई बहस नहीं।" वे लिखित और बोल-चाल की भाषा में किसी प्रकार की दूरी को स्वीकार नहीं करते थे। दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा में उन्होंने कहा था– "यह समझ लीजिए कि जिस दिन आप अंग्रेजी भाषा का प्रभुत्व तोड़ देंगे और अपनी एक कौमी भाषा बना लेंगे, उसी दिन आपको स्वराज्य के दर्शन हो जाएंगे। ..... राष्ट्र की बुनियाद, राष्ट्र भाषा है, नदी, पहाड़ और समुद्र राष्ट्र नहीं बनाते। भाषा ही वह बंधन है, जो चिरकाल तक राष्ट्र को एक सूत्र में बांधे रहती है।"

प्रेमचन्द साहित्य का प्रत्येक शब्द उनके गहरे सामाजिक सरोकार को स्पष्ट करता है। इसीलिए आज हम उन्हें याद कर रहे हैं। क्योंकि बीसवीं सदी के प्रारम्भिक दशक का यह लेखक अपनी दूरदर्शिता से जो कुछ कह गया, उसके सही मूल्यांकन के लिए शती कम ही पड़ रही

है। महादेवी वर्मा ने कहा था कि– "प्रेमचन्द की प्रासंगिकता उनकी गंभीर संवेदना में है..... पहले उन्होंने समाज को देखा, उसकी रुढ़ियों, कुरीतियों को देखा और समझ कर उनको अपने अंक में उठा लिया, उन्हें गौरव प्रदान किया।

प्रेमचन्द मानते थे कि जिस धर्म में रह कर लोग दूसरों का पानी नहीं पी सकते, 'उस धर्म में मेरी गुंजाइश कहां।' इसी तरह उन्होंने सच्ची इंसानियत का जो पाठ हमें पढ़ाया है, उससे उनकी प्रासंगिकता आज भी बनी हुयी है। लोक सत्ता का यह लेखक शोषण के सभी रूपों की खिलाफत करता रहा। उन्होंने धार्मिक पाखंड और धूर्तता का विरोध किया। फर्जी देशभक्त, तथाकथित इंसानियत। (हैवानियत) का पाठ पढ़ाने वाले धूर्तों का विरोध किया और माना कि 'साहित्य हमारे जीवन को स्वाभाविक और स्वाधीन बनाता है। दूसरे शब्दों में, उसी की बदोलत मन का संस्कार होता है। ऐसे उद्देश्य को लेकर चलने वाले प्रेमचन्द की प्रासंगिकता उनके समय में भी थी, आज भी है और आने वाला वक्त भी उन्हें छोड़ नहीं सकेगा।

सेवा मुक्त आचार्य तथा अध्यक्ष
हिन्दी विभाग
गुरु नानकदेव यूनीवर्सिटी
अमृतसर–143005

सम्पर्क : 5016, जोशीपुरा
निकट खालसा कालेज
अमृतसर–143002

समसामयिक युग में प्रेमचन्द की प्रासंगिकता

प्रोफेसर ज़ौहरा अफ़ज़ल

आज के संदर्भ में प्रेमचन्द की प्रासंगिकता को जांचना एक तरह से प्रेमचन्द की परम्परा को भी समझने की कोशिश करना है। प्रेमचन्द के सत्तर साल बाद भी यह चर्चा संगत इसलिए है क्योंकि वह भारतेन्दु की ही नहीं कबीर, तुलसी की भी परम्परा को हमसे जोड़ती है। प्रेमचन्द हमारी इसी परम्परा की एक विशिष्ट कड़ी थे। उस परम्परा की परिभाषा जरूरी नहीं, थोड़ी व्याख्या बेशक होनी चाहिए ताकि इतने वर्षों बाद हम परख सकें कि प्रेमचन्द हमारे लिए किन अर्थों में प्रासंगिक है।

प्रेमचन्द तत्कालीन थे पर वे सर्वकालीन भी थे, इसलिए वह आज भी प्रासंगिक है। प्रेमचन्द से पूर्व हिन्दी कथासाहित्य के पाठक या तो सनातनधर्मी प्रतिक्रियावादी मनोवृत्ति के ऐतिहासिक रोमांस में उलझे हुए थे या तिलस्म और जासूसी के आश्चर्यजनक करिश्में देख रहे थे। प्रेमचन्द पहले लेखक है जिन्होंने हिन्दी कथासाहित्य को वास्तविकता की जमीन पर खड़ा किया और हिन्दी कथासाहित्य में प्रगतिशील धारणा का समावेश करके उसे एक नया मोड़ प्रदान किया। प्रेमचन्द ने

अन्धविश्वासों और रूढ़ियों का पोषण करने वाले घिसे हुए सामाजिक मूल्यों का खण्डन करते हुए एक गतिशील विकासोन्मुख सामाजिक यथार्थ से पाठकों का परिचय कराया। प्रेमचन्द ने अपने सम्पूर्ण साहित्य में मानववादी को व्यापक अर्थ में ग्रहण किया है। उनके लिए मानवता का तात्पर्य है धर्मनिरपेक्ष भाव से जनसामान्य की मंगल कामना और इसी को उन्होंने अपने साहित्यिक क्रियाकलाप का एक मात्र लक्ष्य निर्धारित किया। अपने दृष्टिकोण में उन्होंने लिखा है–**'हमारे साहित्य को जनता के हृदय के साथ एक कर देने की अत्यन्त आवश्यकता है, जिससे वह सार्वजनिक जीवन से प्रेरित जनता की आत्मा के साथ जी सके।'** उनका मानना था कि साहित्य की "सर्वोत्तम परिभाषा" **जीवन की आलोचना है।** जीवन की आलोचना तथा व्याख्या से प्रेमचन्द का तात्पर्य मनुष्य के भावी स्वप्नों को साकार करने वाली निर्माणमुखी कार्य-साधना से है। उनके लेखन की विशेषता यह थी कि अपनी समयाविधि से जुड़े होने पर भी, वह मनुष्य मात्र की आशा-आकांक्षा, संघर्ष विवशता, पीड़ा उदारता आदि को इस भांति प्रकाशित करता है कि विभिन्न पात्र, स्थितियाँ और कथानक देशकाल की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए बहुआयामी बन जाते हैं। उनकी कहानियों, उपन्यासों के पात्रों के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि यह बीते हुए समय के लोग थे। वे आज भी है और भविष्य मे भी होंगे, क्योंकि वे जीवन से जुड़े हुए पात्र है और प्रेमचन्द ने अधिकतर उनके चरित्र के वही मार्मिक पक्ष उद्घटित किए है जो उन्हें **'अपने युग'** का होते हुए भी **सब युगों का बनाते हैं।** प्रेमचन्द के लेखन की सर्वकालिता और समासामयिकता केवल यह कहने भर से सिद्ध नहीं हो जाती कि **'जो शाश्वत है वह प्रासंगिक तो होगा ही'** दरअसल इन्सान और उसकी जिंदगी को देखने

समझने की जो निगाह प्रेमचन्द के पास थी वह बहुत कम लोगों में देखने को मिलती है। प्रेमचन्द जिस राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ उभरे थे उसके ध्येय अभी अधूरे हैं वह हमें आज भी प्रासंगिक लगती है। तत्कालीन समाज की कोई भी समस्या अथवा मानवीय संवदेनाओं का कोई भी पहलू प्रेमचन्द की आँखों से ओझल नहीं हो पाया है। वह चाहे किसानों से जुड़ी समस्या हो, दहेज समस्या अथवा अनमेल विवाह की समस्या हो या फिर अछूत समस्या, साम्प्रदायिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक पहलुओं से जुड़ी समस्या हो। प्रेमचन्द ने बड़ी से बड़ी समस्या पर लेखनी चलाई है। प्रेमचन्द की प्रतिबद्धता समाजगत औ सोद्देश्य लेखन के प्रति थी। वे न केवल व्यक्ति को वरन् समाज को भी बेहतर बनाना चाहते थे। समाज के सभी वर्गों का सजीव तथा प्रभावशाली चित्रण प्रेमचन्द के साहित्य में मिलता है। उनके साहित्य को पढ़ते समय तत्कालीन समाज का जीवन्त स्वरूप हमारी नज़रों के सामने आ जाता है। उनके पात्र आज भी हम अपने आस-पास पाते हैं।

प्रेमचन्द और सांप्रदायिक समस्याएं :

प्रेमचंद की दृष्टि में धर्म का मामला व्यक्ति का निजी मामला है। हर व्यक्ति को यह अधिकार है कि वह धर्म पर विश्वास करे या न करे अथवा वह अपने विवेक सम्मत धर्म को अपनाए। इसीलिए वे मजहब को कभी महत्व नहीं दे सके। प्रेमचन्द ने इस बात को स्पष्ट करते हुए कहा है **'मुझे रस्मी मजहब पर कोई एतकाद नहीं है पूजा-पाठ और मंदिरों में जाने का भी मुझे शौक नहीं है। शुरू से ही मेरी तबियत का यही ढंग है। बाज लोगों की तबियत तो मजहबी होती है, बाज लोगों की लामजहबी। मैं मजहबी तबीयत रखने वालों को बुरा नहीं**

कहता लेकिन मेरी तबियत रस्मी मजहब को बिल्कुल गवारा नहीं करती।" एक अन्य स्थान पर वह कहते हैं "मैं एक इंसान हूँ और जो इन्सानियत रखता हो, इन्सान का काम करता हो मैं वही हूँ और उन्हीं लोगों को चाहता हूँ।" ऐसा निस्सीम मन लेकर ही प्रेमचन्द हिन्दु-मुस्लिम प्रश्न को अपने उपन्यासों में तथा कहानियों में हल कर पाए। प्रेमचन्द को अपनी इन्सानियत पर इतना भरोसा था और ईश्वरता के प्रति इतना अधिक अविश्वास कि वे कभी आस्तिक नहीं हो पाए। 1907 से 1936 तक साम्प्रदायिक समस्याओं के क्षेत्र में जितने उतार चढ़ाव आए थे, सबको प्रेमचन्द के कथासाहित्य में देखा जा सकता है। सेवासदन, कायाकल्प, प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, रंगभूमि, गबन, गोदान आदि उपन्यासों तथा पंचपरमेश्वर, विचित्र होली, जुलूस, मुक्तिधन, क्षमा, डिग्री के रुपये, मन्दिर मस्जिद, लैला चाय, दो कब्रें, ईदगाह, जिहाद, तगादा, दिल की रानी, बौड़म आदि कहानियों में प्रेमचन्द ने मुख्यतः साम्प्रदायिक समस्याओं को ही उठाया है। इन रचनाओं के हिन्दू और मुसलमान पात्र धर्म सम्प्रदाय के संकुचित दायरे से मुक्त हैं। वे अपने धर्म पर पूर्ण आस्था रखते हुए, दूसरे धर्म और धर्मालंबियों को आदर की दृष्टि से देखते हैं। उनका यथोचित सम्मान करते है। हिन्दू और मुसलमान आपस में किस प्रकार से घुल मिलकर रहते हैं, एक दूसरे की सहायता करते हैं। इसका ज्वलन्त उदाहरण पंच परमेश्वर कहानी में देखने को मिलता है। इस कहानी में हिन्दू की पंचायत मुसलमान करता है और मुसलमान की पंचायत हिन्दू। न्याय के पद पर बैठते ही दोनों व्यक्तिगत सम्बन्ध ों को भूलकर निष्पक्ष निर्णय देते हैं। इसी तरह दूसरी कहानियों में भी प्रेमचन्द ने जिस समाज की रचना की है, वहाँ सांप्रदायिक विद्वेष का नामोनिशान नहीं। बौड़म कहानी का मुख्य पात्र मुहम्मद खलील उर्फ

बौड़म सांप्रदायिकता से कोसों दूर है। वह अपने घर होने वाली कुर्बानी का विरोध करता है और सफल न होने पर प्रायश्चित स्वरुप गाय खरीद कर हिन्दुओं में बांटता है।

सांप्रदायिक सदभाव के चित्रण के साथ साथ प्रेमचन्द ने सांप्रदायिक वैमनस्य तथा द्वेष को भी चित्रित किया है। उसकी तिक्त भाव से आलोचना करते हुए उसमें छिपी राजनीतिक तथा धार्मिक शक्तियों को भी अनावृत्त किया है, ताकि हमारे देश के लोग इन शैतानी शक्तियों को पहचान सकें तथा इनके बहकावे में न आए। वैसे तो प्रेमचन्द का ऐसा कोई भी उपन्यास नहीं है जिसमें सांप्रदायिकता की समस्या को न उठाया गया हो परन्तु कायाकल्प में इस समस्या का चित्रण अपेक्षाकृत अधिक विस्तार तथा यथार्थ पूर्ण ढंग से किया गया है। इसका एक बड़ा कारण तो यह है कि यह उपन्यास उस समय लिखा गया था जब देश में सांप्रदायिकता का नग्न नृत्य हो रहा था। छोटी-छोटी बात को लेकर आए दिन हिंसा और उपद्रव का बोलबाला था। मौलवी तथा पंडित अपने निजी स्वार्थ को साधने तथा भ्रष्ट राजनीतिज्ञों के कहने पर लोगों को आपस में लड़ा रहे थे। इसी संदर्भ में प्रेमचन्द इस उपन्यास में एक स्थान पर लिखते हैं कि "हिन्दुओं ने महावीर दल बनाया, मुसलमानों ने अली गोल सजाया। ठाकुरद्वारे में ईश्वर कीर्तन की जगह नबियों की निन्दा होती, मस्जिदों में नमाज की जगह देवताओं की दुर्गति। ख्वाजा साहब ने फतवा दिया- जो मुसलमान किसी हिन्दू औरत को निकाल ले जाय, उसे एक हजार हजों का सवाब होगा। यशोदानन्दन ने काशी के पण्डितों की व्यवस्था मंगाई कि एक मुसलमान का वध एक लाख गोदान से श्रेष्ठ है" ब्रिटिश सरकार से बढ़ावा पाकर शीघ्र ही साम्प्रदायिक वैमनस्य ने

उग्र रूप धारण कर लिया। उसके बाद देश में साम्प्रदायिक दंगों की जो आंधी उठी, उसने समस्त वातावरण को दूषित कर दिया। वे हिन्दु और मुसलमान जो प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रहे थे। अब एक दूसरे के खून के प्यासे बन गए।

इस स्थिति का प्रेमचन्द ने कायाकल्प में ख्वाजा महमूद और यशोदानन्दन के प्रसंग में बड़ा ही यथार्थपूरक चित्रण किया है। पहले यह दोनों एक दूसरे के विश्वासपात्र मित्र थे और समाज सेवा के क्षेत्र में कंधे से कंधा मिलाकर एक दूसरे के साथ काम करते थे। परन्तु दोनों मित्रों की यह सदभावना स्थायी नहीं बन पाती। साम्प्रदायिक संकीर्णता और अविवेक इस सीमा तक पहुँच जाता है कि वे दोनों सम्प्रदायों को लड़ाने वाली ब्रिटिश सरकार की कूटनीति को न समझ कर एक दूसरे को ही अपना वास्तविक शत्रु समझने लगते हैं। और परिणाम स्वरूप एक मित्र के दल द्वारा दूसरे मित्र की हत्या हो जाती है। यशोदानन्दन की लाश को देखकर ख्वाजा महमूद की खोई हुई विवेक बुद्धि पुनः जागती है और वह पहली बार महसूस करते हैं कि इन साम्प्रदायिक झगड़ों के पीछे किसी तीसरी शक्ति का हाथ छिपा हुआ है। इसी प्रकार प्रेमचन्द एक अन्य पात्र चक्रधर से यह कहलवाते हैं "**बुरे हिन्दू से अच्छा मुसलमान उतना ही अच्छा है जितना बुरे मुसलमान से अच्छा हिन्दू। देखना यह चाहिए कि वह कैसा आदमी है, न कि किस धर्म का आदमी है।**" कुछ इसी प्रकार के सदभावना युक्त विचार प्रकट करते हुए ख्वाजा महमूद कहते हैं "**हिन्दू रहो चाहे मुसलमान, खुदा के सच्चे बन्दे रहो। सारी खूबियां किसी एक कौम के हिस्से में नहीं आई। न सब मुसलमान पाकीजा हैं न सब देवता है, इसी तरह न**

सभी हिन्दू काफिर है न सभी मुसलमान मोमिन। जो आदमी दूसरी कौम से जितनी नफरत करता है समझ लिजिए वह खुदा से उतना ही दूर है।"

इसी प्रकार प्रेमचन्द ने अपने पात्रों के माध्यम से बार बार इस बात की ओर संकेत किया है कि दोनों संप्रदायों के मिल-जुलकर रहने में ही उनका हित है और जो शक्तियां अपने स्वार्थ के लिए उन्हें लड़ाती है हमें ऐसी विघटनकारी शक्तियों को पहचानकर उनसे सतर्क रहना चाहिए तथा किसी भी धर्म के प्रति हमें मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। धर्म के प्रति उनका यह दृष्टिकोण आज भी कितना सार्थक तथा प्रासंगित जान पड़ता है। आज भी हमारे देश में धर्म के नाम पर लाखों मासूम लोगों के जान से हाथ धोना पड़ रहा है। अनगिनत लोग घर से बेघर हो रहे हैं, कितने मासूम बच्चे यतीम हो रहे हैं कितनी मांओं की गोद सूनी हो रही है और कितनी सुहागिनों के सुहाग उजड़ रहे हैं। इन साम्प्रदायिक घटनाओं का जीता जागता सबूत कुछ वर्ष पहले गुजरात में हुए दंगे है। जिनमें व्यापाक स्तर पर दोनों सम्प्रदायों के लोगों का नरसंहार हुआ, धर्म की आड़ में खून की होली खेली गई। ऐसी कई घटनाएं हमारे देश में घटती रहती है। कुछ भ्रष्ट राजनीतिज्ञ अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए इन्हें धर्म के नाम पर लड़ाते है और हमारे देश की भोली-भाली गरीब जनता उनकी चालों का शिकार हो जाती है। आज के संदर्भ में प्रेमचन्द का साहित्य और भी प्रासंगिक हो उठता है, जिसमें कि उन्होंने सभी सम्प्रदायों को एकजुट होकर इन पाश्विक शक्तियों को पहचानते हुए उसका सामना करने का आवाहन किया है। इस प्रकार आज हमारे समाज में दहेज प्रथा तथा अनमेल विवाह एक बड़ी समस्या के रूप में उभरकर सामने आये हैं। यह समस्या जिसने आज हमारे समाज में एक

व्यापक रूप धारण कर लिया है प्रेमचन्द के समय में भी विद्यमान थी और उन्होंने इस समस्या पर लेखनी चलाते हुए कई कृतियों की रचना की, जिनमें सेवासदन तथा निर्मला प्रमुख है। प्रेमचन्द ने दहेज प्रथा के विरोध में जहाँ भी अवसर मिला है, कड़े शब्दों में अपने विचार प्रकट किए हैं। "निर्मला" उपन्यास की नायिका निर्मला एक अच्छे घर की पुत्री है किन्तु दुर्भाग्यवश उसकी शादी के कुछ दिन पहले उसके पिता की एक हादसे में मृत्यु हो जाती है। निर्मला का विवाह उसके पिता ने जहाँ तय किया था उन लोगों ने इस सम्बन्ध से इन्कार कर दिया क्योंकि वह अच्छा खासा दहेज लेना चाहते थे और निर्मला की विधवा माता उनकी यह माँग पूरी नहीं कर पाती। लड़का भुवनमोहन शादी से इन्कार करते हुए कहता है "कहीं ऐसी जगह शादी करवाईए कि खूब रुपया मिले और न सही एक लाख का तो डील हो"। इसके लिए वह इस बात पर भी तैयार था कि "औरत कैसी भी मिले क्योंकि धन सारे ऐबों को छिपा देगा। वह गालियाँ भी सुनाए तो भी चूँ न करूँ। दुधारू गाय की लात किसे बुरी मालूम होती है।" विवश होकर पर्याप्त दहेज न दे सकने के कारण निर्मला की विधवा माँ उसकी शादी एक दुहाजू वृद्ध व्यक्ति के साथ कर देती है। जिनकी पहली पत्नी से तीन पुत्र होते हैं, निर्मला मुंशी तोताराम के घर में तीन बच्चों के लिए विमाता, एक अधेड़ के लिए विकसित यौवन के रूप में प्रवेश करती है। यह साफ तौर पर दिखाई देता है कि उसका जीवन अनेक तूफानी लहरों के बीच डाँवाडोल है। वह बिमाता है, इसलिए हजार ढंग के स्नेहपूर्ण व्यवहारों के बाद भी वह अपने पति तथा बच्चों का विश्वास नहीं जीत पाती, वह अन्त तक उसे संदेहपूर्ण दृष्टि से ही देखते हैं। उसका पति उसके चरित्र पर इसलिए संदेह करता है क्योंकि सबसे बड़ा पुत्र यौवन के द्वार पर

पहुँच गया हैं। उनके प्रति निर्मला के ममतापूर्ण व्यवहार को भी वे द्वेषपूर्ण दृष्टि से देखते हैं। वह अपने पत्नी धर्म के प्रति सच्ची होकर भी पति की सहभागिनी नहीं हो पाती। रोती झिझकती है, क्योंकि उसके पति उसके पिता के हम उम्र लगते हैं। वह गृहस्थी को सुचारू रूप से चलाने की इच्छुक है किन्तु वृद्धा ननद गृहस्थी पर एकाधिकार जमाए हुए हैं। ऐसी परिस्थितियों में निर्मला का जीवन तनाव और दु:खों से भर जाता है। वह अपने जीवन से समझौता करने की पूरी कोशिश करती है किन्तु सफल नहीं हो पाती।

इस बेमेल विवाह के दुष्परिणाम स्वरूप सारा घर तबाह हो जाता है और स्वयं निर्मला घुल-घुलकर मर जाती है। मरते समय उसके उद्‌गार कथा का निष्कर्ष प्रकट करते हैं। वह कहती है "दीदीजी अब मुझे किसी वैद्य जी की दवा फायदा न देगी। आप मेरी चिन्ता न करे, बच्ची को आपकी गोद में छोड़ जाती हूँ। अगर जीती जागती रहे तो किसी अच्छे कुल में विवाह कर दीजिएगा। मैं तो इसके लिए जीवन में कुछ न कर सकी। केवल जन्म देनेभर की अपराधिनी हूँ। चाहे कुँवारी रखियेगा, चाहे विष देकर मार डालिएगा, पर कुपात्र के गले न मढ़ियेगा। इतनी ही मेरी आपसे विनय है"।

निर्मला घोर यथार्थवादी रचना है। दहेज जैसी कुप्रथा तथा अनमेल विवाह के दुष्परिणामों को दिखाकर प्रेमचन्द समाज की आंखें खोलना चाहते है। एक प्रौढ़ पति और नवयौवना पत्नी के बीच संबंध कितने नाजुक होते हैं, कितने अविचारगत कितनी शंका भरे, फिर भी कितने यथार्थ। एक सम्पन्न परिवार के विनाश की जिम्मेदारी इस बेमेल विवाह को सौपकर प्रेमचन्द समाज का चुनौती देते हैं। निर्मला भारतीय समाज

की उन पीड़ित युवतियों का प्रतिनिधित्व करती है जो दहेज प्रथा और अनमेल विवाह का शिकार होकर तड़प-तड़पकर मर जाती है।

इसी प्रकार सेवासदन में प्रेमचन्द ने दहेज प्रथा, अनमेल विवाह, वेश्या-समस्या को प्रमुखता से उठाया है। सेवासदन की नायिका सुमन दहेज न दे पाने के कारण अनमेल विवाह का शिकार होती है और उसे वेश्या बनने पर मजबूर होना पड़ता है। प्रेमचन्द अपने पूर्वर्ती लेखकों से भिन्न कोण से वेश्या समस्या पर विचार करते है। उनका मानना था कि घृणा का पात्र वेश्या नही अपितु वह समाज है, जो उसे यह अनैतिक व्यवसाय ग्रहण करने के लिए बाध्य करता है। अत: हमें वेश्यावृत्ति को समाप्त करने के लिए सदियों से अन्याय तथा शोषण पर टिकी हुई समाज व्यवस्था को बदलना होगा। सेवासदन के एक विशिष्ट पात्र कुँवर अनिरूद्ध सिंह कई स्थलों पर प्रेमचन्द का प्रतिनिधित्व करते दिखाई देते हैं। वेश्या समस्या के संबंध में उनका वक्तव्य अत्यन्त दूरगामी परिणाम का संकेत है, वे कहते हैं, "हमें वेश्याओं को पतित समझने का कोई अधिकार नहीं। यह हमारी परम घृष्टता है। हम रात-दिन जो रिश्वत लेते हैं, सूद खाते हैं, असहायों का गला काटते हैं, कदापि इस योग्य नहीं है कि समाज के किसी अंग को नीच या तुच्छ समझे। हमारे शिक्षित समुदाय की बदौलत दालमण्डी आबाद है, चौक में जो चहल-पहल है,चकलों में रौनक है। यह मीना बाजार हम लोगों ने सजाया है ये चिड़िया हम लोगों ने ही फसाई है। जिस समाज में अत्याचारी जमींदार "रिश्वती कर्मचारी" अन्यायी महाजन, स्वार्थी बन्धु आदर और सम्मान के हकदार हो, न वहाँ दालमण्डी क्यों न आबाद हो। हराम का धन हरामकारी के सिवा और कहाँ जा

सकता है। जिस दिन नजराना, रिश्वत, सूद-दर-सूद का अंत होगा। उसी दिन दालमण्डी उजड़ जाएगी। यह चिड़िया उड़ जाएगी उससे पहले नहीं।"

दूरदर्शी प्रेमचन्द ने केवल वेश्या समस्या बल्कि उसके कारण तथा समाधान को भी प्रस्तुत किया है। यह समस्या आज भी हमारे समाज में एक रोग की तरह विद्यमान है। और इसने पहले से भी अधिक विकराल रूप धारण कर लिया है। आज हमारे समाज की कई ऐसी स्त्रियां हैं जो कि भले घर से संबंध रखती है किन्तु दहेज तथा अनमेल विवाह के कारण अथवा समाज से तिरस्कृत होने के कारण घृणाकारी पेशे को अपनाने के लिए विवश है। आज आजादी के इतने वर्षों के पश्चात् जबकि हमारे देश ने इतनी प्रगति कर ली है, शिक्षा का स्तर इतना बढ़ गया है फिर भी आए दिन सैकड़ों युवतियाँ दहेज के कारण मौत के घाट उतार दी जाती हैं। उन्हें जिन्दा जला दिया जाता है या फिर मानसिक तथा शारीरिक यातना दे देकर उनका जीवन मृत्यु से भी बदतर कर दिया जाता है। जिससे कि वे स्वयं आत्महत्या करने पर मजबूर हो जाती है। ऐसी परिस्थितियों में प्रेमचन्द का साहित्य और भी प्रासंगिक हो उठता है। वह हमें यह सोचने पर विवश कर देता है कि क्या हमने सचमुच में प्रगति कर ली है या फिर क्या हम अपने आपको शिक्षित तथा सभ्य समाज के प्राणी कहलाने के योग्य है? ऊपर जिन विकृतियों की समाप्ति से वेश्य समस्या के अन्त की बात कही गई है, वे ही भारत में गरीब-मजदूर किसान के क्रूर शोषण और अन्याय के लिए भी जिम्मेदार है। इन विकृतियों की समाप्ति का मतलब है गरीबी और असमानता का उन्मूलन। यह तब तक संभव नहीं है जब तक कि सामाजिक ढाँचे में

आमूल परिवर्तन नहीं होता। इन्ही विकृतियों को आधार बनाकर प्रेमचन्द ने अपने अन्य उपन्यासों प्रेमाश्रम, गोदान, रंगभूमि, कर्मभूमि, कायाकल्प आदि की रचना की है। इन उपन्यासों का कथानक कृषक वर्ग की दुर्दशा और जमींदार वर्ग की धनलिप्सा, अनैतिकता, क्रूरता तथा स्वार्थपरता को केन्द्रीय विचार बनाकर चला है। जमींदार वर्ग की अनीतियों के कारण ही ग्राम्य जीवन नारकीय बना। उसमें रहने वाले कृषकों को निर्धनता की चक्की में पिसना पड़ा जिसके कारण लाखों लोग गाँव को छोड़कर शहरों की ओर पलायन करने पर मजबूर हो गए। गोदान का पात्र गोबर इसी पलायन का प्रतीक है। वह गाँव में अपनी तथा अपने परिवार वालों की दुर्दशा, गरीबी, शोषण तथा कभी न समाप्त होने वाले कर्ज से तंग आकर शहर भाग जाता है किन्तु प्रेमचन्द ने इस पलायन को समस्या का समाधान नहीं माना है उनका मानना है कि समस्त किसानों को अपने हक को पहचानना होगा और एकजुट होकर संगठित होकर शोषक वर्ग का सामना करना होगा, तभी इस समस्या का समाधान मिल सकेगा।

भारतीय जीवन का महाकाव्य कहलाने वाले उपन्यास गोदान में प्रेमचन्द ने कृषक वर्ग तथा ग्रामीण जीवन की जो तस्वीर पेश की है वह अत्यन्त ही मार्मिक तथा करूणादायक है। साथ ही वह किसान के जीवन का यथार्थपूर्ण दृश्य प्रस्तुत करती है। भारतीय कृषक की दयनीय स्थिति और उस पर श्रृण का कभी न समाप्त होने वाला बोझ, उसे समाप्त कर रहा है वह किसान से मजदूर बनने पर बाध्य हो रहा है। उसके जीवन का अन्त कितना भयानक हो सकता है, यह सब कुछ इस उपन्यास में दिखाया गया है। केवल जमींदार वर्ग ही नही बल्कि सरकार, महाजन, पुरोहित पुलिस आदि सभी लोग मिलकर उसका रक्त चूस रहे हैं और वह बिचारा अपनी खोखली प्रतिष्ठा और मर्यादा बनाए

रखने के लिए निरन्तर पिसता चला जा रहा है और अन्ततः केवल मृत्यु ही उसे शान्ति देती है। किसानों की जो त्रासदी प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों द्वारा प्रस्तुत की है वह आज आजादी के 60 वर्षों बाद भी वैसे की वैसी ही है उसमें कुछ खास परिवर्तन नहीं हुआ है। आज भी यदि हम भारतीय गाँवों में झाँक कर देखें तो हमें अनगिनत होरी, धनिया तथा गोबर मिल जाएगें। हाँ इतना जरुर है कि पुराने जमींदारों के स्थान पर नए भूपति स्थापित हो गये हैं। यह बात नहीं कि कोई विकास नहीं हुआ है, किन्तु भारतीय कृषकों में कुल मिलाकर गरीबी, असहायता, उत्पीड़न, शोषण बढ़ा ही है। आज भी हमारे देश में लाखों किसान श्रृण के कारण आत्महत्या करने को विवश हैं। अभी हाल ही में यह खबर सुनने को मिली की महाराष्ट्र के किसी गाँव में कपास की खेती करने वाले किसानों की फसल प्राकृतिक आपदा के कारण नष्ट हो गई किन्तु सरकार ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया परिणाम स्वरूप कर्जा न चुका पाने के कारण पिछले सात महीने में सौ से अधिक किसानों ने आत्महत्या कर ली और अपने पीछे रोते बिलखते परिवारों को छोड़ गए। यह सब देखकर तो लगता है कि विकास के नाम पर किए जा रहे बड़े-बड़े वायदे खोखले हैं मात्र दिखावा है या फिर विकास का लाभ केवल उन्हें मिला है जो उसका लाभ उठाना जानते हैं। इसलिए गोदान आज भी अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है। जिस प्रकार में होरी तथा उसका परिवार दरिद्रता से भरपूर जीवन जीने के लिए विवश है उसी प्रकार हमारे देश में किसान आज भी जीवन की बुनियादी जरूरतों से वंचित है। हमारा देश कृषि प्रधान देश कहलाता है और किसान को यहाँ अन्न देवता की उपाधि से सम्मानित किया जाता है किन्तु यह अन्न देवता कहलाने वाले किसान के पास स्वयं भरपेट खाने के लिए अन्न

नहीं है। यही कारण है कि आज कोई भी किसान यह नहीं चाहता कि उसका बेटा किसानी करे। परिणामस्वरूप या तो वह शहर में पनाह ले रहे हैं, वहीं पर बड़े-बड़े कारखानों में मेहनत मजदूरी कर रहे हैं या फिर शहरों के पूंजीपतियों या उद्योगपतियों के हाथों अपनी पुस्तैनी जमीन बेच रहे हैं। जिसका सशक्त चित्रण प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास रंगभूमि में किया है। रंगभूमि का सूरदास अपनी जमीन बेचने को तैयार नहीं होता। वह अपनी पैतृक भूमि ग्रामीण समाज के हितार्थ इसी रूप में रख छोड़ना उचित समझता है। उसका सुनिश्चत मत है कि वहाँ कारखाना बनने पर ग्रामीण जीवन की सरलता नष्ट हो जाएगी और अवांक्षित औद्योगिक ह्रासशील तथाकथित सभ्यता का विकास होगा। औद्योगिकरण के विरुद्ध उसकी धारणा बहुतों को विचित्र लग सकती है किन्तु उसे आशंका है कि कारखाना खुलने से मुहल्ले की रौनक बढ़ेगी, लोगों के रोजगार में फायदा होगा, लेकिन साथ में ताड़ी-शराब का प्रचार बढ़ेगा, कसबिया आकर बस जाएगी व अधर्म फैलेगा। किसान अपना धंधा छोड़ मजदूरी के लालच में दौड़ेगें और बुरी-बुरी बात सीखेंगे। देहातों की लड़कियाँ, बहुएं भी मजूरी करने आएगी और अपना चरित्र बिगाड़ेगी। पॉडेपुर में जब कारखाना बनकर तैयार हुआ तो सूरदास को जो अंदेशा था वही हुआ।

दरअसल सूरदास के माध्यम से प्रेमचन्द ने जिस आशंका को प्रस्तुत किया है वह प्रेमचन्द की आशंका थी। प्रेमचन्द प्रगति के विरुद्ध नहीं थे किन्तु प्रगति का मूल्य यदि हमें नैतिकता, आदर्श, मर्यादा तथा संस्कृति का गला घोटकर चुकाना पड़ता हो तो वह उन्हें कदापि मंजूर न था। प्रेमचन्द ने पूँजीवाद से प्रभावित सामाजिक, आर्थिक स्थिति को महाजनी सफलता का नाम दिया जिसके कारण अर्थ ही जीवन का

विधायक बन गया था। इस सभ्यता ने जीवन के हर क्षेत्र को प्रभावित किया है। यहाँ तक कि धर्म भी धन से संचालित होने लगा महाजनी सभ्यता लेख में प्रेमचन्द वर्णन करते है 'साहित्य, संगीत और कला सभी धन की देहली पर माथा टेनकने वालों में है। यह हवा इतनी जहरीली हो गई है कि इससे जीवित रहना कठिन होता जा रहा है। दया और स्नेह, सच्चाई और सौजन्य का पुतला मनुष्य दया-ममता शून्य जड़ यनत्र बनकर रह गया है। इसी महाजनी सभ्यता में नए-नए नियम गढ़ लिए है प्रेमचन्द जी लिखते हैं 'महाजनी सभ्यता के कारण मियाँ-बीबी, बाप-बेटे, गुरु-शिष्य आदि में नेह नाते समाप्त होकर आर्थिक संबंध ही शेष रह गए हैं।' प्रेमचन्द ने जो आशंका उस समय व्यक्त की थी वह आज के संदर्भ में उतनी ही प्रासंगिक है

सूरदास के माध्यम से प्रेमचन्द हमें सोचने पर विवश कर देते है कि हमारे जीवन का लक्ष्य क्या हो, क्या हमें अपने को ऊंचा उठाने के लिए औरों के अनदेखा कर देना चाहिए। बल्कि नहीं प्रेमचन्द की मानवता भरी दृष्टि ने किसी को भी अनदेखा नहीं किया खासकर शोषित, पीड़ित और दलित वर्ग के लोग, इन लोगों को प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में केन्द्रीयता प्रदान की। हमारे समाज में अछूत कहलाए जाने वाले इस तबके की दीनावस्था पर प्रेमचन्द जैसे जागरूक कथाकार का ध्यान जाना स्वाभविक था। खासतौर पर ऐसे युग में जबकि अछूत समस्या पूरे देश के राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के लिए एक जर्बदस्त चुनौती बन गई थी।

प्रेमचन्द भारत की अछूत समस्या को शुरू से ही राष्ट्रीय दृष्टिकोण से देख और समझ रहे थे। **विविध प्रसंग** में इस समस्या का पहला

उल्लेख, हंस के सम्पादकीय में मिलता है, और इससे अछूत समस्या पर उनका दृष्टिकोण पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है। वे लिखते हैं भारत का उद्धार अब इसी में है कि राष्ट्रीय धर्म के उपासक बने विशेष अधिकारों के लिए न लड़कर समान अधिकारों के लिए लड़े, हिन्दू या मुसलमान, अछूत या ईसाई बनकर नहीं, भारतीय बनकर संयुक्त उन्नति की ओर अग्रसर हो, अन्यथा हिन्दू, मुसलमान अछूत और सिख सब रसातल के चले जाएँगे' (विविध प्रसंग पृ. 373)

इस प्रकार निम्न पर्ग अथवा गरीबी का जीवन बिता रहे व्यापक जन-समूह को प्रेमचन्द ने अछूत वर्ग के रूप में चित्रित किया है। प्रेमचन्द की कहानियाँ भी उतनी ही प्रांसगिक हैं जितना उनके उपन्यास

ठाकुर का कुँआ में संकलित कहानियाँ, मोटे तौर पर 1924 और 1934 के बीच लिखी हुई कहानियाँ हैं इनमें सौभाग्य के कीड़े, मंदिर मनत्र, घासवाली सदगति, ठाकुर का कुँआ, दूध का दाम लोकमत का सम्मान, बाबा का भोग आदि शामिल हैं। **मंदिर,** कहानी मई 1927 में प्रकाशित हुई। इस कहानी में अछूतों की मंदिर प्रवेश की समस्या को केन्द्र में रखा गया है। कहानी कुछ इस प्रकार है। सुखिया नामक विध वा का एकमात्र बच्चा जियाराम बहुत बीमार था। स्वप्न में वह मनौती मांग बैठी **"भगवान मेरा बालक अच्छा हो जाये तो मैं तुम्हारी पूजा करूँगी।** अनाथ विधवा पर दया करो, बच्चा कुछ देर के लिए अच्छा हो गया, मगर संध्या के समय फिर से उसकी तबीयत खराब हो गई, तब सुखिया घबरा उठी, तुरन्त मन में शंका उत्पन्न हुई कि **पूजा में विलम्ब करने से ही बालक मुरझा गया है।** अपने चाँदी के घड़े गिरवी रखकर अछूत सुखिया पूजा की थाली सजाकर मंदिर पहुँची

लेकिन उसे मंदिर के भीतर जाने से रोक दिया गया। उसके आँसुओं और फरियाद का मंदिर के पुजारी और भक्त जन पर कोई असर नहीं हुआ, चमारिन के छू देने से भगवान के अपवित्र होने का डर था। सुखिया वहाँ से हटकर खड़ी हो गई और रात को उसने एक बार फिर पुजारी से जाकर पूजा करने की इजाजत माँगी। चालाक पुजारी ने इजाजत तो नहीं दी अलबत्ता छल कपट से उसका एक रुपया भी ऐठ लिया। बालक की हालात बिगड़ती गई। रात के तीन बजे एक हाथ में थाली लिए दूसरे में जियावान को संभाले वह फिर से मंदिर जा पहुँची। वह ताला तोड़कर मंदिर के भीतर घुसना ही चाहती थी कि पुजारी के चोर-चोर का शोर सुनकर वहाँ भक्त मण्डली पहुँच गई। एक बलिष्ठ ठाकुर ने उसे जोर से धक्का दिया जिससे बच्चा उसके हाथ से छूटकर जा गिरा और मर गया। यह देखकर सुखिया की दोनों मुट्ठियाँ भिंच गई। दाँत पीसकर बोली पापियों मेरे बच्चे के प्राण लेकर अब दूर क्यों खड़े हो, मुझे भी उसके साथ क्यों नहीं मार डालते, मेरे छू लेने से ठाकुर जी को छूत लग गई न, पारस को छूकर लोहा सोना हो जाता है, पारस लोहा नहीं हो सकता, मेरे छूने से ठाकुर जी अपवित्र हो जाएँगें, मुझे बनाया तब छूत नहीं लगी, लो अब ठाकुर जी को छूने नहीं आऊंगी। ताले में बन्द रखो पहरा लगा दो।

इसके पश्चात् सुखिया अपने मृत बालक का मुख देखते हुए वही पर अपने प्राण त्याग देती है।

यह कहानी दलित और शोषित चमार जाति की एक सदस्या के विद्रोह और बलिदान की कहानी है। यह उस हृदयहीन व्यवस्था के प्रति दुखांत विद्रोह की कहानी है जो भूमिहीन, निर्धन, निर्बल तबको के

आर्थिक शोषण और सामाजिक उत्पीड़न में धर्म से भरपूर सहायता लेती है। जाहिरी तौर पर धर्म और वास्तव में अधर्म और अन्याय पर आधारित व्यवस्था के विरुद्ध एक चमारिन का यह विद्रोह प्रेमचन्द की निजी विशेषता है। यह इस बात का प्रमाण है कि प्रेमचन्द न केवल अपने युग के सामाजिक यथार्थ पर अपनी पकड़ बनाए हुए थे बल्कि भविष्य में आंककर उसे अपनी आंखों के सामने विकसित होता भी देख रहे थे। इसी प्रकार उनकी अन्य कहानियाँ भी अछूत कहलाए जाने वालों के जीवन का ज्वलंत दस्तावेज है। उनकी ऐसी ही एक कहानी, सदगति, है जो 1931 में 1931 में प्रकाशित हुई। सदगति, सड़ते हुए सामंतवाद की गिरफ्त में तड़पते भारतीय ग्राम्य जीवन का एक यथार्थवादी दर्दनाक दस्तावेज है। पिछले सौ वर्षों से पूँजीवादी और उच्च शिक्षा प्राप्त मध्यवर्गीय नेतृत्व में चल रहे अछूतोद्धार आंदोलन का भारत के ग्रामों को क्या और कितना लाभ मिला था। सदगति उसे बेपर्दा करने की एक ईमानदार कोशिश है। प्रेमचन्द ने 'गोदान' में भी चमारिन सिलीया के माध्यम से अछूत जाति के शोषण का सशक्त तथा मार्मिक चित्रण किया है। उस पर अत्याचार करने वाला और कोई नहीं बल्कि तथाकथित उच्च वर्ग से संबंध रखने वाला कुलीन ब्राह्मण मातादीन है जो उसका दैहिक शोषण तो करता है किन्तु उसके हाथ का पका हुआ खाना न खाकर अपने धर्म की रक्षा किए हुए है।

26 दिसम्बर 1932 को संपादक प्रेमचन्द ने अपने साप्ताहिक, जागरण में लिखा था, <u>हरिजन की समस्या केवल मंदिर प्रवेश से हल होने वाली नहीं। इस समस्या की आर्थिक बाधाएँ धार्मिक बाधाओं से कहीं कठोर है। असल समस्या तो आर्थिक है यदि हम हरिजन भाईयों को उठाना चाहते है अथवा उनकी प्रगति चाहते हैं तो हमें</u>

ऐसे साधन पैदा करने होंगे जो उन्हें उठने में मदद करें। विद्यालयों में उनके लिए वजीफे करने चाहिए, नौकरियाँ देने में उनके साथ रियायत करनी चाहिए। हमारे जमींदारों के हाथ में उनकी दशा सुधारने के बड़े उपादान है। उन्हें घर बसाने के लिए काफी जमीन देकर, उनसे बेगार बन्द करके, उनसे सज्जनता और भलमानसी का बरताव करके वे हरिजनों की बहुत सी कठिनाइयाँ दूर कर सकते हैं।

देश और समाज से जुड़ी एक और बड़ी समस्या है, **भाषा की समस्या,** प्रेमचन्द जैसे जागरूक साहित्यकार ने इस समस्या को बड़ी गंभीरता से लिया था। समाज के लिए भाषा की उपयोगिता को स्पष्ट करते हुए प्रेमचन्द ने उसे सबसे सशक्त संबंध कहा है, उनका मत इस प्रकार है, **मनुष्य में मेल मिलाप के जितने साधन हैं, उनमें सबसे मजबूत असर डालने वाला रिश्ता भाषा का है,** हिन्दी और उर्दू के विवाद को उनके वैचारिक लेखों और कथासाहित्य के माध्यम से समझा जा सकता था, पर यह संभव न हो सका। यह सत्य है कि प्रेमचन्द के परवर्ती कथाकारों ने भाषिक विवाद को उस गहराई के साथ नहीं देखा है, जिस गहराई से प्रेमचन्द ने देखा था।

हिन्दी उर्दू के विवाद के संदर्भ में प्रेमचन्द का दृष्टिकोण राजनैतिक नेताओं के दृष्टिकोण से कुछ भिन्न था। जहाँ एक ओर सायास हिन्दी और उर्दू को अलग किया जा रहा था। वहीं दूसरी और प्रेमचंद बार-बार इस तथ्य पर जोर दे रहे थे कि 'बुनियादी तौर पर दोनों एक है। उनकी मान्यता थी कि, मेरे ख्याल से हिन्दी और उर्दू दोनों एक जबान है। क्रिया और कर्त्ता, फ्रेम और फाइल जब एक है तो उनके एक होने में कोई

संदेह नहीं हो सकता' प्रेमचंद जानते थे कि दोनों भाषाएं मिलकर ही हिन्दुस्तानी जबान को आगे बढ़ा सकती है और साम्राज्यवादी नीति का विरोध कर सकती है। हिन्दी उर्दू की एकता शीर्षक लेख में प्रेमचन्द ने इसी विचार को प्रकट किया है। जब दोनों भाषाओं का मेल न होगा। हिन्दुस्तानी जबान की गाड़ी जहाँ आकर रूक गई है वहाँ से आगे न बढ़ सकेगी।जिन हाथों ने यहाँ की जबान के दो टुकड़े कर दिए है, उसने हमारी कौमी जिन्दगी के दो टुकड़े कर दिए।

'हिन्दी' नाम के संबंध में भी प्रेमचन्द का विचार अन्य लोगों से भिन्न था। उनके अनुसार यह नाम मुसलमान द्वारा दिया गया है और जिसे आज उर्दू कहा जा रहा है, पहले मुसलमान भी उसे हिन्दी कहते थे। इसी कारण प्रेमचन्द शुद्ध हिन्दी के आन्दोलन का विरोध करते थे। उनकी मान्यता थी कि यदि भारत शुद्ध हिंदू देश होता तो यहाँ की भाषा भी शुद्ध हिन्दी हो सकती थी। परन्तु ऐसा नहीं है। भारत केवल हिन्दुओं का देश नहीं है, जब तक यहाँ मुसलमान, ईसाई, पारसी, अफगानी सभी जातियाँ मौजूद है, हमारी भाषा शुद्ध हिन्दी कभी नहीं हो सकती, हमारी भाषा व्यापक रहेगी। प्रेमचन्द भी महात्मा गाँधी की तरह राष्ट्रीय एकता के आधार पर भाषा समस्या का समाधान चाहते थे, परन्तु वे हिन्दी और उर्दू के संगठनों से मुक्त रहे। भाषा के प्रश्न पर प्रेमचन्द हिन्दुस्तानी के कट्टर समर्थक रहे। वे चाहते थे कि हिन्दुस्तानी को ही राष्ट्रभाषा और संपर्क भाषा बनाया जाए। आम आदमी की जिन्दगी में व्यहृत होने वाले शब्द, चाहे वे किसी भी भाषा के हो, उन्हें स्वीकार कर लेने में प्रेमचन्द को कोई संकोच न था। वे लिखते हैं 'उर्दू और हिन्दी में क्यों इतना सौतियाडाह है, मेरी समझ में नहीं आता, अगर एक संप्रदाय के लोगों को

उर्दू नाम प्रिय है तो उसका इस्तेमाल करने दिजिए, जिसे हिन्दी नाम से प्रेम है, वह हिन्दी ही कहे। इसमें लड़ाई काहेकी' प्रेमचन्द ने साम्राज्यवादियों और सामंती भाषा वैज्ञानिकों के इस विचार का खंडन किया है कि भाषा का आधार धर्म है अथवा हिन्दी हिन्दुओं की और उर्दू मुसलमानों की भाषा है। सांप्रदायिक आधार पर भाषिक विवाद का खंडन करके प्रेमचन्द ने परवर्ती लेखकों को एक दिशा प्रदान की थी। पर उनकी कोशिशों के बावजूद आज तक भाषिक विवाद समाप्त नहीं हो सका है। होना तो यह चाहिए था कि स्वतन्त्रता के साथ-साथ भाषिक विवाद भी समाप्त होता, पर हुआ नहीं। हाँ यह जरुर हुआ कि विवाद का रूप बदल गया आजादी के बाद सत्ताधारियों राजनीतिज्ञों के लिए हिन्दी-उर्दू का विवाद वरदान साबित हुआ। सत्ता पर अपनी पकड़ मजबूत बनाये रखने के लिए इस वर्ग ने लगातार भाषिक विवाद को बनाये रखना अनिवार्य समझा। आजादी के बाद पहले आम चुनाव से ही मुसलमान समाज को तुष्ट करने के लिए उर्दू को मोहरा बनाकर जो राजनीतिक खेल प्रारम्भ हुआ, वह आज भी जारी है। निश्चय ही ऐसी मानसिकता को बड़े अलगावबाद के अलावा दूसरा नाम देना संभव नहीं है। अतः आज के साहित्यकार को सजग होकर भाषा के विवाद मे न पड़कर अपनी कलम का सोद्देश्यपूर्ण उपयोग करना चाहिए। प्रेमचन्द के शब्दों में, "साहित्य में हम हिन्दू नहीं, मुसलमान नहीं, ईसाई नहीं बल्कि मनुष्य है। और यह मनुष्यता हमें और आपको आकर्षित करती है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रेमचन्द ने अपने कथासाहित्य के माध्यम से भारतीय जनता को जो संदेश दिया, उसके संघर्ष और समस्याओं से अनवरत जूझते, अन्धविश्वासों, रूढ़ियों, पाखंडियों, आडम्बरों पर तीखा

प्रहार करने, कर्मशीलता, सत्य अहिंसा और ईमानदारी पर अटूट आस्था रखने, अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सचेष्ट रहने, समाज और राष्ट के उत्थान के प्रति बलिदान होने तथा मानवता की विजय पताका फहराने का अमर घोष विद्यमान है। वस्तुतः प्रेमचन्द कालजयी कथाकार के रूप में प्रतिष्ठित है और उनका साहित्य अमर है। उन्होंने मानवीय संवेदना के किसी भी पहलू को अपनी आँखों से ओझल नहीं होने दिया। उनकी कोई कृति ऐसी नहीं है जिसमें मानवता के उत्थान का संदेश न हो। मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष को सहजता, स्वभाविकता और विश्वसनीयता के साथ उद्घाटित करने का महत्वपूर्ण कार्य प्रेमचन्द ने बड़ी कुशलता के साथ किया।

हिन्दी साहित्य को प्रेमचन्द की देन अतुलनीय है। प्रेमचन्द के लेख, सम्पादकीय टिप्पणियाँ, सम्मेलनों के मंच से दिए गए अध्यक्षीय भाषण और उनका अमर कथा संसार सामाजिक बदलाव की माँग करता रहा है। वह आज भी हमें भ्रष्ट व्यवस्था के खिलाफ खड़े हो जाने और शोषण के विरुद्ध संघर्ष करने की प्रेरणा देता है। प्रेमचन्द का लेखन हमारे अन्दर एक ऐसी बेचैनी पैदा करता है कि हमें अपने आस-पास की स्थिति पर सोचने पर मजबूर हो जाते हैं। वास्तव में प्रेमचन्द का चिन्तन क्रान्तिकारी है और वे कान्तिदर्शी लेखकों की कोटि में आते हैं। क्योंकि जिस सामाजिक बदलाव की आवश्यकता को उन्होंने वर्षों पहले महसूस किया था, वह आज और भी विराट रूप में हमारे सामने मुँह बाये खड़ी है। वर्तमान ही नहीं, भविष्य की नियति को पहचान लेना प्रेमचन्द जैसे महान लेखक के लिए ही सम्भव था।

आज का इन्सान यदि व्यवस्था के बदलाव की माँग करता है अपने हक की माँग करता है तो ऐसे लेखन को ही आधुनिक तथा

प्रांसगिक माना जाएगा। प्रेमचन्द ऐसे ही लेखन की परम्परा को छोड़ गए हैं। प्रेमचन्द ने हमें यह सोचने पर मजबूर दिया है कि हम कहाँ खड़े है, हमारी दिशा क्या है और लेखक के नाते हमारी वास्तविक स्थिति क्या है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. (डा. जनेश्वर वर्मा) प्रेमचन्द की वैचारिक तथा रचनात्मक पृष्ठभूमि
2. प्रेमचन्द एवं समकालीन भारतीय उपन्यासकार (डा. (श्रीमति) कलावती प्रकाश)
3. समकालीन जीवन संदर्भ और प्रेमचन्द (एस. धर्मेश गुप्त)
4. प्रेमचन्द और अछूत समस्या (कांतिमोहन)
5. प्रेमचन्द एक अध्ययन (गुरु)
6. प्रेमचन्द के उपन्यासों में व्यंग बोध (उर्मिल सिन्हा)
7. प्रेमचन्दोत्तर कथा साहित्य और सांप्रदायिक समस्याएं (ओम प्रकाश सिंह)
8. प्रेमचन्द कथा साहित्य, समीक्षा और मूल्यांकन (डा. धर्मध्वज त्रिपाठी)
9. गोदान (प्रेमचन्द)
10. सेवासदन (प्रेमचन्द)
11. निर्मला (प्रेमचन्द)
12. कायाकल्प (प्रेमचन्द)
13. रंगभमि
14. ठाकुर का कुँआ, कहानी संग्रह

समसामयिक युग में प्रेमचन्द की प्रासंगिकता

डॉ. प्रत्यूष गुलेरी

प्रेमचन्द आधुनिक भारत के शीर्षस्थ और कालजयी साहित्यकारों में अग्रणी रहे हैं। भारतीय ही नहीं अपितु उन्होंने साहित्य–सृजन से विश्वसाहित्य को भी प्रभावित किया है। विश्व के कई देशों में उनका नाम बड़े आदर और सम्मान से लिया जाता है। उन्होंने युगयुगानुरूप ऐसे साहित्य की रचना की जो कि शाश्वत है। उनका रचित साहित्य आज भी हर धर्म, हर जाति, हर सम्प्रदाय और हर उम्र के पाठक के लिए न केवल प्रासंगिक है अपितु प्रेरणा दायक एवं प्रकाशदायी है। प्रेमचन्द का जन्म 31 जुलाई, 1880 ई. को वाराणसी के लमही गांव में हुआ था। यह देश के इतिहास का वह समय था जब देश अंग्रेजों के दमन एवं शोषण के विरुद्ध आवाज बुलंद कर रहा था। राजा राम मोहन राय के बाद स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, बंकिमचन्द्र, दादाभाई नारोजी, गोखले आदि ने अपने विचारों और कार्यों से ऐसी जागृति पैदा की कि लोगों के मनों में स्वदेशी, स्वराज्य तथा स्वाधीनता की आवाज़ों का संचार हुआ। राष्ट्र के ऐसे उद्वेलन, मंथन एवं आत्मचिन्तन के बीच ही हिन्दी–उर्दू के प्रख्यात साहित्यकार प्रेमचन्द का जन्म, पालन पोषण, शिक्षण, जीविका तथा लेखन का सिलसिला शुरू हुआ।

प्रेमचन्द युग का विस्तार सन् 1880 से 1936 ई. तक है। यह कालावधि भारत के इतिहास में महत्वपूर्ण है। इस युग में भारत का स्वतन्त्रता संग्राम नई मंजिलों से गुजरा। यह संघर्ष अधिक सशक्त और गहरा था। कांग्रेस का जन्म और लालन-पालन नरम दल की देखरेख में हुआ था। किन्तु क्रमशः गांधी जी ने इसके नेतृत्व की बागडोर संभाली। वे ब्रिटिश सत्ता के विरोध में तीव्र जन-आन्दोलन छेड़ रहे थे। इसका अर्थ था सुख और सुविधाओं का परित्याग और कठिनाइयों तथा कारावास का वरण।

अपने संपूर्ण जीवनकाल में प्रेमचन्द ने उग्र होते हुए राष्ट्रीय संघर्षों का साथ दिया। जब कांग्रेस का नेतृत्व गोखले जैसे नरम दली नेताओं के पास था तब प्रेमचन्द उग्रपन्थी गांधीवादी थे। बाद में श्रमजीवी जनता और किसान की आर्थिक मुक्ति के बारे में मनोयोग से सोचने विचारने लगे।

प्रेमचन्द का संपूर्ण साहित्य भारतीय समाज की आन्तरिक चेतना और इतिहास के परिवर्तन का दस्तावेज है। अपने समाज के मूलभूत अन्तर्विरोधों को पहचान कर प्रेमचन्द ने समाज और राष्ट्र की जीवन शक्ति के मूल स्त्रोतों तक पहुंच कर मानवीय अर्थवत्ता और अस्मिता को नए सन्दर्भों से परिभाषित किया। वे तोड़फोड़ में नहीं अपितु मनुष्य की रचनात्मक शक्ति में विश्वास रखने वाले साहित्यकार थे। युग के अनुरूप साहित्य का स्वरूप कैसा हो–उसकी कसौटी क्या हो, इस बारे में उनका स्पष्ट विचार था– हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च विचार–चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाशन हो– "जो

हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं क्योंकि अब और सोना मृत्यु का लक्षण है।"

प्रेमचन्द का जीवन उनके साहित्य के समान ही रोचक, प्रेरणादायक एवं घटनापूर्ण होने के परिणामस्वरूप अध्येता को परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए एवं श्रेष्ठ मनुष्य बनाने की आधारभूत सामग्री प्रदान करता है। यह श्रेष्ठ बनने की आवश्यकता भी थी और अब भी है कल भी होगी। उनका जन्म तीन बहनों के बाद हुआ था। यही कारण था कि वे सभी के लाड़ले थे। आप सब को मालूम ही है कि पिता ने पुत्र का नाम रखा धनपतराय और ताऊ ने नवाब राय लेकिन आगे चलकर साहित्य में प्रेमचन्द के नाम से ख्यात हुए। माता-पिता के शीघ्र देहान्त ने उन्हें जीवन की कठोर परिस्थितियों का सामना करने के लिए मज़बूर कर दिया। पिता के दूसरे विवाह तथा अपने पहले बेमेल विवाह ने उन्हें उनके क्रूर अनुभव दिए जिनका प्रत्यक्ष उपयोग उन्होंने अपनी रचनाओं में किया। 2 जुलाई 1900 ई. को वे बीस रुपये मासिक पर मास्टर बने और 1 मई, 1903 को उनकी पहली रचना ओल्विर क्रेमवेल उर्दू साहित्यिक पत्र 'आवाज़-ए-खल़क' में धारावाहिक प्रकाशित हुई। मार्च, सन् 1906 में उन्होंने एक बाल विधवा, शिवरानी देवी से विवाह करके एक बड़ी सामाजिक क्रान्ति की।

स्वामी दयानन्द के आर्य समाज तथा विवेकानन्द के विचारों का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा जिसके कारण उनके जीवन एवं साहित्य दोनों में समाज-सुधार, देश-प्रेम, तथा जन-जागरण प्रमुख प्रेरणा स्रोत के रूप में विद्यमान रहे। 'सो़ज़े वतन' 1908 में प्रकाशित उर्दू कहानी संग्रह के सरकार द्वारा ज़बत होने के बाद अपने मित्र मुंशी दयानारायण निगम के

सुझाव पर अपना छद्म नाम 'प्रेमचन्द' रखा और इस नाम से उनकी पहली कहानी 'बड़े घर की बेटी' उर्दू मासिक पत्रिका 'जमाना' में दिसम्बर 1910 अंक में छपी। 1915 में उन्होंने हिन्दी में लिखना शुरू किया।

निगम को लिखते हैं– 'अब हिन्दी में लिखने की मशक भी कर रहा हूं। उर्दू में अब गुज़र नहीं। यह मालूम होता है कि बाल मुकुन्द गुप्त मरहूम की तरह मैं भी हिन्दी लिखने में जिन्दगी सर्फ कर दूंगा। और उनकी पहली हिन्दी कहानी 'सौत' सरस्वती पत्रिका के दिसम्बर, 1915 के अंक में छपी। पहला कहानी संग्रह 'सप्त सरोज' जून, 1917 में प्रकाशित हुआ। वस्तुतः युगद्रष्टा साहित्यकार ही समसामयिक होता है।

अपने युग की पूर्ववर्ती सामाजिक, राजनैतिक और बौद्धिक गिरावटों को दूर करने के लिए प्रेमचन्द ने ध्वंस का मार्ग नहीं अपनाया। उन्होंने वास्तव में समाज के खोखलेपन की जड़ों को पहचाना और समाज के उस वर्ग को केन्द्र में रखा जो अभी तक अभिजात और मध्यवर्ग बुद्धिजीवियों द्वारा त्रस्त और त्यक्त था। जिस तरह गांधी जी ने राष्ट्रीय आन्दोलन में किसानों, मज़दूरों और निम्न वर्ग की उपेक्षित शक्ति को पहचान लिया था, ठीक उसी तरह प्रेमचन्द ने साहित्य के पूर्व प्रतिमानों को नकारते हुए किसानों, मजदूरों और शोषितों के उनके जीवन को निम्नतम स्थिति तक पहुंचाने वाले कारकों को मुख्य धरातल पर रखा। प्रेमचन्द ने न केवल अपने समय को भी परखा अपितु आने वाले समय के भी वे सच्चे साक्षी थे। प्रेमचन्द के लिए सामाजिक क्रांन्ति और समाज के पुनरूत्थान का एक ही मार्ग था– जमींदारों, पूंजीपतियों तथा महाजनों के असली चरित्रों को उजागर करना, निम्न वर्ग के कारकों, गरीबी

अशिक्षा और रूढ़ियों की जकड़बन्दी तोड़ना। प्रेमचन्द मिट्टी की असली सन्तान लगते हैं। भारत के प्राचीन सांस्कृतिक भारतीय परम्परा को उन्होंने टैगोर के समान गहरी अर्न्तदृष्टि से नहीं देखा था, लेकिन आधुनिक विचारों की उनकी पकड़ उनसे कहीं अधिक सक्षम थी। यही कारण है कि वे आज भी प्रासंगिक हैं। वैज्ञानिक व प्रगतिशील दृष्टि पर आधारित विश्व चेतना के वे अधिक निकट थे। भारतीय संस्कृति के विकास में इस्लाम की देन को परखने में उनकी धर्मनिर्पेक्ष दृष्टि रही अधिक सजग और व्यापक थी। वे भारत में दानव-दंगों से बढ़ती औद्योगिकता से चिन्तित थे। उनका यह मानना भी था कि भारत में फैक्ट्रियों के बढ़ते जाल का फल यह होगा कि किसान अपनी भूमि खो बैठेगाा, सामान्य श्रमजीवी का क्रूर शोषण होगा, जीवन और संस्कृति विकृतियों का शिकार होगी तथा असामाजिक तत्वों को बल मिलेगा। प्रेमचन्द की इन आशंकाओं को उनके विराट उपन्यास 'रंगभूमि' में सशक्त स्वर मिला है।

प्रेमचन्द की रचना दृष्टि, विभिन्न साहित्य रूपों में अभिव्यक्त हुई है। वे बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, समीक्षा लेख, संपादकीय संस्मरण आदि अनेक विधाओं में लिखकर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है। प्रमुखतः वे कथाकार हैं। उन्हें अपने जीवन काल में ही उपन्यास सम्राट की पदवीं हासिल हो गई थी। उन्होंने कुल 15 उपन्यास जिसमें 2 अपूर्ण तथा 13 पूर्ण उपन्यास, 300 से अधिक कहानियां, 3 नाटक, 10 अनुवाद, 7 बाल पुस्तकें, हजारों पृष्ठों के लेख, संपादकीय, भाषण, भूमिका, पत्रों आदि की रचना की है। परन्तु यह निर्विवाद है कि जो यश और प्रतिष्ठा उन्हें उपन्यास एवं कहानियों से मिली वह अन्य विधाओं से न मिल सकी।

प्रेमचन्द की प्रासंगिकता इस में आज भी बनी हुई है कि इतिहास बोध और साहित्य संवेदना के माध्यम से उन्होंने अपने साहित्य में खासकर उपन्यासों और कहानियों में करवट बदलते नगरीय समाज के मध्यवर्ग की आकांक्षाओं और दुर्बलताओं को समझा। यही नहीं साथ ही ग्रामीण समाज और जीवन की जर्जरताओं को भी पहचाना। 'सेवासदन', 'निर्मला', 'गबन' आदि उपन्यासों में उन्होंने मध्यवर्गीय समाज की आशाओं परम्पराओं रीतियों रिवाजों में घुटती हुई नारी की समस्याओं के विभिन्न आयामों को उद्‌घाटित किया। प्रेमचन्द के नारी दुर्दशा की दुखती नब्ज पर हाथ रख कर तब लिखा था– "जब तक लेन-देन समाज में घृणा की दृष्टि से न देखा जाएगा और जनमत उसे जघन्य न समझने लगेगा तब तक यही दशा रहेगी।" हम आज भी किसी न किसी तरह से इस भयंकर समस्या के शिकार हैं। 'सेवासदन' उपन्यास में प्रेमचन्द वेश्या समस्या के सवाल को परम्परागत नैतिकता का सवाल नहीं अपितु आर्थिक सवाल मानते हैं। इस समस्या के कारकों में प्रेमचन्द दहेज प्रथा, भौतिकवादी आकर्षण और समाज सुधारकों के वास्तविक चरित्रों की लोभवृत्ति को जिम्मेदार मानते हैं। प्रेमचन्द का आक्रोश समस्या पर तीखी चोट करता है– 'जिस समाज में अत्याचारी जमींदार रिश्वती राज्य-कर्मचारी, अन्यायी महाजन, स्वार्थी बंधु आदर और समान के पात्र हों, वहां दालमंडी क्यों न आबाद हो।'

प्रेमचन्द की दृष्टि में साहित्य जीवन की आलोचना है। साहित्य में जीवन की सच्चाइयों, संवेदनाओं एवं अनुभूतियों को व्यक्त होना ज़रूरी है। साहित्य अपने समय का प्रतिबिम्ब होता है। इसलिए वे साहित्य को केवल मन-बहलाव की चीज नहीं मानते हैं। क्योंकि यह तो भाटों और मदारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है। साहित्यकार का पद इससे

कहीं ऊंचा है। वह हमारा पथ प्रदर्शक होता है। वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है। इसमें सद्भावों का संचार करता है। हमारी दृष्टि को फैलाता है। सच्चा साहित्य वही है जिसमें उच्च चिंतन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सर्जन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो। वह हमें संघर्ष की नित्य नई प्रेरणा देता है। हमें कहीं न कहीं बेचैन करता है। जीवन में हमें गतिमान बनाता है। इन सभी कसौटियों पर प्रेमचन्द का साहित्य प्रासंगिक और खरा उतरता है।' स्पष्ट है साहित्य की सोद्देश्यता-उपादेयता को लेकर प्रेमचन्द ईमानदार थे। प्रेमचन्द अपने आप में एक युग पुरुष थे। उनका साहित्य हमें भारतीय जनमानस को समझने की शक्ति प्रदान करता है। अब्दुल बिसिमल्लाह का यह कथन कितना सटीक है– "प्रेमचन्द स्वयं एक इतिहास रच रहे थे, यह बात स्वयं प्रेमचन्द भी जानते थे या नहीं, हम नहीं कह सकते। वे साहित्य संस्कृति और इतिहास बोध का प्रासंगिक नवीनीकरण चाहते थे। यही कारण है कि उनके यहां रचना के मूल में भारत के वे किसान हैं, जो इतिहास निर्माता हैं, न कि वे लोग जो इतिहास और संस्कृति के उपभोक्ता हैं। (अब्दुल बिस्मिल्लाह, अल्पविराम पृ. 88-89) प्रेमचन्द साहित्य को ही सच्चा इतिहास मानते हैं। साहित्य अपने युग से सदैव प्रभावित होता है। प्रेमचन्द ने स्वयं माना है कि साहित्य जीवन की समस्याओं पर विचार करता है और उन्हें हल करता है। वह हमारे मन का संस्कार करता है। उन्हीं उद्देश्यों को लेकर प्रेमचन्द साहित्य के क्षेत्र में अवतरित थे। उनके साहित्य में तत्कालीन युगीन परिवेश यथार्थता से अभिव्यक्त हुआ है।

कर्मभूमि में उन्होंने ज़मीन और लगान की समस्या, खेत मजदूरों और गरीब किसानों की समस्या पर जोर दिया है। किसान जीवन की

समस्त विषमताओं दुर्दशाओं को गोदान में चित्रित किया है। साथ ही छुआछूत पर प्रकाश डाला है। 'सेवासदन', 'वरदान' में वे विवाह के सम्बन्धों में प्राचीन आदर्शों के पोषक दिखाई देते हैं। लेकिन अंध परम्पराओं का विरोध करते हैं। वे अनमेल विवाह के विरोधी और विध वा विवाह के समर्थक थे। वे केवल आदर्श की बातें नहीं करते थे। उनका आचरण भी वैसा था। उन्होंने भारतीय समाज के सामने एक आदर्श प्रस्तुत किया। नैतिक पतन को रोकने के लिए उन्होंने 'नमक का दरोगा' की रचना कर आदर्श प्रस्तुत किया है। 'आहुति', 'जुलूस', 'समरयात्रा', 'शतरंज के खिलाड़ी' इत्यादि कहानियों में वे स्वराज्य की परिकल्पना स्पष्ट करते हैं। 'मर्यादा', 'रानी सारंधा', 'जुगनू की चमक', 'सती', 'परीक्षा' आदि कहानियों में त्याग तथा आत्म-बलिदान की भावना उजागर है।

धर्म के नाम पर बंटवारा प्रेमचन्द को मंजूर नहीं था। यही कारण है कि उन्होंने वर्ण व्यवस्था, छुआछूत, हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव का विरोध किया है। वे साम्प्रदायिकता विरोधी एवं मानवता के प्रबल समर्थक थे। साम्प्रदायिक, धार्मिक, पाखंडियों पर व्यंग्य करते हुए उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जोर दिया है। 'कायाकल्प' उपन्यास में हिन्दू-ईसाई मुस्लिम साम्प्रदायिकता को चित्रित किया है। 'मुक्तिधन', 'क्षमा', 'स्मृति का पुजारी', 'हिंसा परमोधर्मः', 'खून', 'जिहाद' आदि कहानियां साम्प्रदायिक एकता को नुकसान पहुंचाने वाले विरोधियों की पोल खोलती है। देश की मुक्ति के लिए दो कौमों की एकता, मेलजोल पर उन्होंने जोर दिया है। स्पष्ट है कि समस्या और उसके उपाय को लेकर प्रेमचन्द कहीं भी दुविधा में नहीं रहे। प्रेमचन्द इसीलिए प्रासंगिक हैं कि उन्होंने एक-एक समस्या को लेकर बृहत् उपन्यासों की रचना की है। आज भी गांव का

होरी जो दिन-रात एक करता है, अपना खून पसीना बहाता है, दो जून की रोटी से दूर है। वह आज भी अब भी शोषण की चक्की में पिस रहा है। केवल शोषण करने वालों के नाम बदले हैं। अतएव प्रेमचन्द युगदृष्टा मनस्वी थे। वह अपने समय के प्रति सजग, एक गहरे सामाजिक और इतिहास बोध से सम्भव साहित्यकार थे। उनके समय के पंडित बाल मुकुन्द गुप्त, माखन लाल चतुर्वेदी, बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन' सुभद्रा कुमारी चौहान, रामवृक्ष बेनीपुरी सहित अनेक साहित्यकारों की रचनाओं में युग की पुकार स्पष्ट सुनाई देती है।

कथा साहित्य मे प्रेमचन्द ने जासूसी और तिलस्म के स्थान पर आश्चर्य और कौतुहल का जो समावेश किया है वह स्मरणीय है। उन्हें शिल्पगत विशेषता के लिए भी याद किया जाएगा। उनका हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं पर अधिकार था। वे दोनों भाषाओं में ही लिखते रहे और भाषा व ऐसे रूप को विकसित किया जो पढ़े लिखे और बिना पढ़े लिखे व्यक्ति के लिए भी सरल और सुगम है।

भाषा शिल्पी के रूप में प्रेमचन्द ने जन-मन को गहराई तक छू लेने वाली जिस भाषा को कथा साहित्य में संवारा है, वह आज भी अनुकरणीय है और भविष्य में भी अनुकरणीय रहेगी। उन्हें कथन के क्षेत्र में गहरी मानवीय दृष्टि और सामान्य मनुष्य के प्रति संवेदना जागृत करने के लिए भी कभी भुलाया नहीं जा सकता। 'गोदान' के होरी तथा 'रंगभूमि' के सूरदास जैसे पात्रों के माध्यम से प्रेमचन्द ने जनमानस को जिस प्रकार उद्वेलित किया है, उसका स्मरण अक्टूबर 1936 में प्रेमचन्द के न रहने पर महात्मा गांधी ने किया था। उन्होंने लिखा था– 'जब हमारा देश आज़ाद होगा और जब हमारा ग्रामीण समाज बेरोजगारी,

गरीबी, शोषण और कुशिक्षा से मुक्त होगा, तब लोग कल्पना भी नहीं कर सकेंगे कि कभी भारत का किसान और मज़दूर वैसी हालत में था। तब प्रेमचन्द के उपन्यास और कहानियां श्रेष्ठ साहित्य के रूप में पढ़े जायेंगे और उनसे पता चलेगा कि तत्कालीन भारत का जीवन कैसा था?' वस्तुत: आज कुछ तो बदला है और बहुत कुछ वैसा ही है।

सच्चाई तो यह है कि प्रेमचन्द का न केवल कथा साहित्य अपितु गद्य साहित्य व पत्रकारिता साहित्य का परिवेश हमें आज भी जब कि हम स्वतन्त्रता के 59 वर्ष देख चुके हैं, सोचने को बाध्य करता है कि क्या हमारा स्वराज्य का स्वप्न पूरा हो सका है? बदलाव तो निश्चित रूप से आया है परन्तु 'गोदान', 'निर्मला', 'रंग भूमि' और 'कर्म भूमि' की दुनिया को हम बदलावों के बावजूद आज भी अपने देश और समाज में देख सकते हैं। यही नहीं इसी दुनिया का विस्तार उनकी कहानियों और निबन्धों में भी सहज ही प्राप्य है।

प्रेमचन्द युगद्रष्टा थे। वे बच्चों के लिए सत्साहित्य के समर्थक थे। वे बच्चों पर माता-पिता के अधिक दबाव के हिमायती न थे। हंस पत्रिका के संपादकीय 'बच्चों को स्वाधीन बनाओ' शीर्षक में लिखते हैं– 'बालक को प्रधानत: ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि वह जीवन में अपनी रक्षा आप कर सके।'

बालकों में इतना विवेक चाहिए कि वे हर काम के गुण दोष को भीतर की आंखों से देखें। प्रेमचन्द बच्चों को परिवार में आज्ञाकारी और अनुशासित तो देखना चाहते थे, किन्तु यह नहीं चाहते थे कि माता-पिता डिक्टेटर की तरह बच्चे का रिमोटकंट्रोल अपने हाथ में रखे। आज भी मनोवैज्ञानिक इसी मत को मानने वाले हैं कि बच्चों के मौलिक विचारों

को सम्मान मिलना चाहिए और उन्हें जीवन में कुछ करने की छूट मिलनी चाहिए। यह भी कटु सत्य है कि प्रेमचन्द को अधिकांश बाल पाठकों ने अपनी पाठ्य पुस्तकों में उनकी कहानियों– 'पूस की रात', 'पंच परमेश्वर', 'गुल्ली-डंडा', 'दो बैलों की कथा', 'नादान दोस्त', 'कुत्ते' को पढ़कर ही जाना और याद रखा है। बाद में पठन रूचि वालों ने उनका साहित्य बड़े होकर पढ़ा। इन कहानियों में प्रेमचन्द ने बच्चों की कई पीढ़ियों में मानवीय संवेदनाओं के साथ मानवता, न्याय-अन्याय, नैतिकता और सामाजिक आचार, व्यवहार जैसे जुड़े मूल्यों और सामाजिक रिश्तों की महत्ता का संदेश पाठकों को दिया है। कुत्ते की कहानी और 'दो बैलों की कथा' ऐसी कहानियां हैं जिनमें पशुओं को वाणी देकर उन्हें मानवीय पात्र के रूप में प्रस्तुत करके बाल पाठकों के मन में प्राणि जगत के प्रति संवेदना और सहानुभूति जगाने का प्रयास किया है। प्रेमचन्द वास्तव में युगद्रष्टा थे। उन्हें मालूम था कि बच्चे ही देश का भविष्य हैं। इन बच्चों में उच्च मानवीय गुणों का समावेश बालपन में किया जाना ही आवश्यक है।

यह भी सच है कि प्रेमचन्द के बाद कथा साहित्य ने कई दिशाओं में नई जमीन तलाशी है। जैनेन्द्र कुमार, इलाचन्द्र जोशी, अमृतलाल नागर, यशपाल, विष्णु प्रभाकर, मोहन राकेश, कमलेश्वर, फणीश्वर रेणु, राजेन्द्र यादव, उपेन्द्रनाथ अश्क, गिरिराज किशोर, विनोद कुमार शुक्ल तथा नरेन्द्र कोहली आदि ने नए-नए प्रयोग किए हैं। फिर भी हमें आज भी किसी प्रेमचन्द जैसे सशक्त साहित्यकार की प्रतीक्षा है जिसकी दृष्टि व्यापक हो, जिसकी सहानुभूति गहन हो, जो जन सामान्य से जुड़ा हो और जिसकी लेखनी एक समग्र युग और परिवेश को सहज एवं सरल रूप में समन्वित करके प्रस्तुत कर सके। प्रेमचन्द ने 'गोदान' में जो मिर्जा

खुर्शीद से कहलवाया है वह आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना कि उस समय में था – मेरा बस चले तो कौंसिलों को आग लगा दूं जिसे हम डेमोक्रेसी कहते हैं वह व्यवहार में बड़े-बड़े व्यापारियों और जमींदारों का राज्य है और कुछ नहीं। चुनाव में वही बाजी ले जाता है, जिसके पास रुपये हैं। निश्चित ही प्रेमचन्द ने अपने समय से आंख मिलाकर यथा स्थिति की जड़ता को तोड़ा था और आम आदमी की चेतना और संवेदना को झकझोरा था। यही कारण है कि सूरदास और होरी मरकर भी शोषित व्यक्ति को आत्म-सजग बना गए।

प्रेमचन्द ने बीसवीं शती के प्रारंभिक चरण में इतिहास को खंगाला था, संस्कृति को नया आयाम दिया था और यथार्थ के धरातल पर भविष्य का सपना देखा था। अपने समय की विषम परिस्थितियों में उन्होंने सामान्यजन के हित को सर्वोपरि मानकर सामाजिक नवजागरण की लौ जलाई थी। उनके साहित्य ने जन-जन में नए खून का संचार किया था। भारत आज जैसा कुछ है, उसे बनाने में प्रेमचन्द के कृतित्व का विशेष योगदान है। आजादी के अरूणोदय को देखने का सौभाग्य उन्हें नहीं मिला था। आजादी को आज हमारे नेता खिलौने के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं वह बेहद त्रासदपूर्ण है। प्रेमचन्द ने शोषण मुक्त समाज की कल्पना की थी। उपर्युक्त विचार-विश्लेषण के आलोक में हम निश्चय ही यही कहेंगे कि प्रेमचन्द समसामयिक युग में प्रासंगिक हैं। उनके द्वारा रचित विपुल साहित्य आने वाली पीढ़ियों का पथ आलोकित एवं प्रकाशित करता रहेगा।

– कीर्ति कुसुम
सरस्वती नगर, पोस्ट ऑफिस-दाड़ी - 176057
धर्मशाला (हिमाचल प्रदेश)

नाटककार प्रेमचन्द की प्रासंगिकता

डॉ. परमेश्वरी

आज 70 वर्ष के बाद भी हम प्रेमचन्द को याद करते हैं क्यों? वे न तो बड़े राजनेता थे न ऐसे समाज सुधारक जिन्होंने कोई बड़ा आंदोलन चलाया हो और न ही ऐसे विचारक जिन्होंने भारतीय चिन्तन की दिशा को प्रभावित किया है। वे एक लेखक थे जो केवल हिन्दी उर्दू के ही नहीं अपितु आधुनिक भारतीय साहित्य के एक बड़े लेखक। एक बड़ा लेखक जो समकालीन पाठक का आदरणीय होने के साथ-साथ पीढ़ी-दर-पीढ़ी पूजा जा रहा है। वह न केवल अपने समय के लोगों की सोच पर असर डालता है बल्कि आने वाले समय में भी पीछे देखने वालों के लिए मंत्रदाता ऋषि बन जाता है जिससे न केवल उसकी भाषा और देश के लोग सलाह लेते हैं, उसमें दिलचस्पी लेने वाले दुनिया भर के पाठकों के लिए उसके पास मनुष्य संदेश होता है। प्रेमचन्द ने यही किया है। वे एक बड़े लेखक थे। उन्होंने कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में रचनात्मक उपलब्धि का कीर्तिमान तो स्थापित किया ही–अपने समूचे लेखन में अपने समय की सम्पूर्ण स्थितियों, समस्याओं, संघर्षों और चिन्ताओं को अभिव्यक्ति दी। उनके समय की राजनीति, समाज, धर्म, दर्शन, सम्प्रदाय आदि सभी उनके अनुभव और चेतना में समा कर

साहित्य में उतरे हैं इसलिए उनका साहित्य उनका पूरा समय है, पूरा समाज है। अपने समय की तमाम सच्चाइयों से वे लेखकीय तटस्थता के साथ रू-ब-रू हो रहे थे लेकिन हृदय से सदा अभिशप्त-कमजोर समाज के पक्ष में खड़े दिखाई दिए। इसलिए उनके साहित्य में एक तरफ मानव-समाज की विसंगतियों का अन्धकार है तो दूसरी तरफ मूल्यों और संवेदनाओं का प्रकाश, एक तरफ कलात्मक निस्संगता है तो दूसरी तरफ अपने समाज और राष्ट्र की समस्याओं के दबाव की तकलीफ और उनसे मुक्त होने की चिन्ता है। प्रेमचन्द अपने समय के भारतीय समाज और जीवन की गहराई को आत्मसात करने वाले कलाकार हैं। उनकी लोकप्रियता से यह साबित होता है कि जो लेखक अपने समय और समाज को जानता-समझता और अभिव्यक्त करता है वही लोकप्रिय होता है। यह कहा जा सकता है कि जो लेखक कालजीवी होता है वही कालजयी भी होता है।

प्रेमचन्द के साहित्य में भारतीय समाज के हाशिए पर रहने को अभिशप्त लोग ही नायक बने। समाज के उपेक्षित बेजुबान लोगों को वाणी देने वाला साहित्यकार आज भी प्रासंगिक है, आज भी प्रेमचन्द के किसान आत्म हत्याएं कर रहे हैं, मजदूर भुखमरी का शिकार हो रहे हैं, साम्प्रदायिकता अपने इतिहास के सब से खूंखार रूप में फैल रही है। ऐसी स्थिति में प्रेमचन्द का साहित्य समाज के वर्तमान संकटों को पहचानने में सहायक है। इस बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न लेखक ने 15 उपन्यास, 360 से अधिक कहानियां, 3 नाटक, अनुवाद, बाल-साहित्य आदि के क्षेत्र में योगदान दिया। कथाकार के रूप में ख्याति प्राप्त प्रेमचन्द को समग्रता में समझने के लिए उनके नाटकों का भी अध्ययन होना चाहिए।

उनके तीन मौलिक नाटक संग्राम (1922), कर्बला (1924) और प्रेम की वेदी (1933) हैं। न्याय, हड़ताल, चांदी की डिबिया और सृष्टि का प्रारम्भ अनूदित नाटक हैं। इनमें पहले तीन जॉन गाल्सवर्दी के नाटकों के अनुवाद हैं और अन्तिम नाटक जार्ज बनार्ड शाह के नाटक का हिन्दी अनुवाद है।

'संग्राम' मधुबन नामक गांव के किसान हलधर और उसकी पत्नी राजेश्वरी की आशा-आकांक्षाओं से शुरू होता है। हलधर पत्नी के कंगन और मृत पिता की वरसी के लिए जमींदार से 200 रुपया कर्ज़ लेता है। फसल पर ओले पड़ जाने के कारण वह कर्ज़ नहीं चुका पाता। सबल जमींदार उसकी पत्नी (राजेश्वरी) के रूप सौन्दर्य पर आसक्त होकर हलधर को पुलिस-हिरासत में भिजवा देता है। राजेश्वरी अपने पति का प्रतिशोध लेने के लिए जमींदार की ही शरण में रहने लगती है। वहां सबल का भाई कंचनसिंह भी उस पर आसक्ति दिखाता है। उधर गांव के लोग पुलिस हिरासत से ऋण चुकता करके उसे छुड़ा लेते हैं। पत्नी को न पाकर हलधर जमींदार के कत्ल की योजनाएं बनाता है किन्तु राजेश्वरी के कारण आपस में ही दोनों जमींदार भाई एक-दूसरे के शत्रु बन जाते हैं। अन्त में अपने-अपने कुकर्मों के प्रायश्चित स्वरूप घर छोड़ देते हैं। नाटक में सन्यासी चेतनदास एक विलासी साधु है अन्त में वह भी नदी में डूब मरता है। हलधर और राजेश्वरी सुखपूर्वक जीवन जीने लगते हैं।

नाटक एक प्रकार से ग्रामीण और सभ्य समाज का तुलनात्मक अध्ययन भी कहा जा सकता है। किसानों की बेबसी, ऋणग्रस्तता, सामाजिक मान-अपमान की चिन्ता, प्रदर्शन के लिए धन का व्यय,

जमींदारों द्वारा किसानों पर अत्याचार, अपनी लोकप्रियता के लिए अच्छे बनने का ढोंग, निरंकुशता, पुलिस के अत्याचार, लूट-खसोट, ढोंगी साधुओं की धूर्तता पर दृष्टिपात किया गया है। ये सभी कथासूत्र प्रासंगिक हैं।

वासनाओं का ज्वार एक संयमी, धर्मात्मा और परोपकारी व्यक्ति पर जब चढ़ता है तो वह दुर्दशा को ही प्राप्त होता है। वे बुद्धि-विवेक हर लेती है, घर तबाह हो जाते हैं, व्यक्ति तबाह हो जाता है। 'संग्राम' में किसान हलधर की पत्नी राजेश्वरी के सौन्दर्य पर मुग्ध हुए दो जमींदार भाई सबलसिंह और कंचनसिंह तबाही को प्राप्त होते हैं। सबल सब जानते हुए भी पाप-पंक में डूबता है और मन ही मन प्रायश्चित भी करता है– 'मैं कामवासनाओं की चपेट में आ गया हूं और किसी तरह मुक्त नहीं हो सकता। खूब जानता हूं कि यह महाघोर पाप है। आश्चर्य होता है कि इतना संयमशील होकर भी मैं उसके दांव में कैसे आ पड़ा। कलुषित प्रेम? पापाभिनय ! भगवन् ! उस घोर अग्निकुंड से मुझे बचाना– यह पाप-पिशाच मेरे कुल का भक्षण कर जायेगा।'

काम-वासनाओं के अनियन्त्रण से बड़े-बड़े पूजा-पाठी भयानक पापाचारी हो जाते हैं। कंचनसिंह आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करता रहा किन्तु नारी के रूप आकर्षण से अपने आपको बचा न पाया। चेतन सन्यासी भी सबलसिंह की पत्नी ज्ञानी का सतीत्व हरण करके (चौथे अंक का तीसरा दृश्य) सम्पत्ति का मालिक बनने की लालसा रखता है– 'ईश्वर की इच्छा हुई तो शीघ्र ही मनोरथ पूरे होंगे। ज्ञानी मेरी होगी और मैं इस विपुल सम्पत्ति का स्वामी हो जाऊंगा। कोई व्यवसाय, कोई विद्या, मुझे इतनी जल्द इतना सम्पत्तिशाली न बना सकती थी।' (संग्राम, पृ० 124)

साधुओं के पाखण्डों की चर्चा प्राय: सुनी जाती है किन्तु किस प्रकार वे लोगों को कुमार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं इसका उदाहरण सन्यासी चेतन है जिसकी शरण में जब सबलसिंह जाता है तो उसे अनुचित उपदेश से गलत रास्ते पर चलने को भी उचित ठहराता है– 'आत्मा के विकास में पापों का भी मूल्य है। इच्छाओं का हनन करो, मनोवृत्तियों को रोको, ये मिथ्या तत्ववादियों के ढकोसले हैं। यह सब अबोध बालकों को डराने के 'जू-जू' हैं। (पृ० 44) जहां तक दोनों भाइयों को एक ही नारी पर आसक्त देख, उन्हें लड़ाने की इच्छा से ऐसा ही उपदेश देता है– 'भूमि, धन और नारी के लिए संग्राम करना क्षत्रियों का धर्म है। इन वस्तुओं पर उसी का वास्तविक अधिकार है जो अपने बाहुबल से उन्हें छीन सके। इस संग्राम में दया और धर्म, विवेक और विचार, मान और प्रतिष्ठा सभी कायरता के पर्याय हैं।' (पृ० 122)

साधु-सन्यासी प्राय: स्वयं कुमार्गी होते हैं शरणागत को भी कुमार्ग पर चलने के उपदेश देते सुने जाते हैं और सामान्य जनता को बहला फुसलाकर अपने समूह में शामिल करने में माहिर होते हैं। यह समस्या प्रेमचन्द के समय से बराबर चली आ रही है। आज भी इन लोगों को शंका की दृष्टि से देखा जाता है। हलधर किसान को जब जमींदार पुलिस-हिरासत में भिजवा देता है तो गांव वाले उसका पता न पाकर चिन्तित हो जाते हैं। किसानों का आपसी वार्तालाप इन साधुओं के कुकृत्यों की ओर ध्यान आकर्षित करना है– 'हरदास - साधु लोग भी आदमियों को बहका ले जाते हैं।'

फत्तू– हां सुना है, मगर हलधर कभी साधुओं की संगत में नहीं बैठा। गांजे-चरस की भी चाट नहीं कि इसी लालच में जा बैठता हो।

मंगरू– साधु आदमियों को बहका कर क्या करते हैं?

फत्तू– भीख मंगवाते हैं– अपनी टहल करवाते हैं, बर्तन मंजवाते हैं, गांजा भरवाते हैं। भोले आदमी समझते हैं, बाबा जी सिद्ध हैं, प्रसन्न हो जाएंगे तो एक चुटकी राख में मेरा भला हो जाएगा, कुछ दिनों में यही टहलुवे संत बन बैठते हैं और अपने टहल के लिए किसी दूसरे को मूंड़ते हैं। (पृ० 55)

जमींदार किसान शोषण तो प्रचलित रहा है किन्तु उसमें भी किसान की पत्नी इन बड़े लोगों की हवस का शिकार बनती है यह नारी-जीवन के लिए दु:खद स्थिति है। नारी के लिए उसका सौन्दर्य भी अभिशाप बन जाता है। निसहाय ग्रामीण नारी कुदृष्टि रखने वाले कामुक लोगों से किस प्रकार अपने आपको बचाती है। नाटक में राजेश्वरी के माध्यम से यह बताया गया है। जमींदार सबल को अपनी ओर आकर्षित होता देखकर उसे संयम का बांध लगाने का आग्रह करते हुए राजेश्वरी बता देती है कि वह एक पतिव्रता ग्रामीण नारी है– 'क्या आप समझते हैं कि मैं अहीर जात और किसान हूं तो मुझे अपने धरम-करम का कुछ विचार नहीं है और मैं धन और सम्पत्ति पर अपने धर्म को बेच दूंगी। आपका भरम है।' (पृ० 32) नारी आज भी केवल देह के रूप में देखी जाती है उसके सम्पर्क में आकर पुरुष भूल जाता है कि वह किस जाति से सम्बन्धित है या किस वर्ग की है। नारी युगों से अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती रही है। 'संग्राम' में एक ग्रामीण निर्धन औरत पतिव्रत धर्म के पालन के लिए जमींदार समाज से संग्राम करती है। पति का पुलिस से छुड़वाने के लिए छल का सहारा लेती है किन्तु अपने सतीत्व को ताक पर रखकर नहीं बल्कि दृढ़ मनोबल से अपना गांव छोड़कर

जमींदार के पास आकर रहने में उसे कष्ट होता है तो भी यह सब बड़े धैर्य और कुशलता से करती है– मैं इनकी रक्षा करना चाहती हूं पर अपना सत खोकर नहीं, इनको बचाना चाहती हूं, पर अपने आपको डुबोकर नहीं।' (पृ० 161)

पुलिस के कुकृत्य आज किसी से छिपे नहीं हैं। भारतीय पुलिस के लिए जस्टिस आनन्द नारायण मुल्ला का कथन है– "भारतीय पुलिस सर्वाधिक संगठित डाकू प्रतिष्ठान है।" सत्य के पर्याप्त निकट लगता है। (कुबेर नाथ राय: रस आखेटक, (पृ० 234) अपराधी को पकड़ना नहीं राह चलते बेकसूर व्यक्ति को पकड़कर धन बटोरना आज भी बरकरार है। हलधर के अचानक गायब हो जाने पर संदेह पुलिस पर ही जाता है। हरदास का निम्नलिखित संवाद पुलिसवालों की छवि को उजागर करता है– 'थाने वालों की भली कहते हो। राह चलते लोगों को पकड़ा। आम लिये देखा होगा; कहा होगा, चल थाने पहुंचा आ।' (पृ० 53) पुलिस की रिश्वत लेने की मनोवृत्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ी ही है। यही नहीं पुलिस के साथ मिलकर बड़े-बड़े अपराध किए जाते हैं। चोरों के गिरोह चोरी का हिस्सा बराबर पुलिस को देते आये हैं ताकि उनके धन्धे में पुलिस बाधक न बने। नाटक में जमींदार की पत्नी के गहने लूटने वाले डाकू के शब्दों में– 'दस हजार से कम का माल नहीं है। ऐसा अवसर फिर न मिलेगा। थानेदार को 100 या 200 रुपया देकर टरका देंगे। बाकी सारा अपना है।' (पृ० 105)

जिस विभाग पर अपराधियों को पकड़ने या चोरों को उचित दण्ड देकर जन सामान्य के धन-माल की सुरक्षा का जिम्मा है वही अपराध में संलिप्त है। ऐसे में प्रत्येक व्यक्ति असुरक्षित महसूस करता है। नाटक

में चोरी के माल की तफ़तीश के लिए आई पुलिस ग्रामीणों के घरों की तलाशी ले रही है। घर की सब चीजें देखी जा रहीं हैं। जो चीजें जिसको पसन्द आती है उठा लेता है। औरतों के बदन के गहने भी उतरवा लिये जाते हैं। पुलिस के लिए ग्रामीणों का निम्नलिखित वार्तालाप कितना उचित है– 'इन जालिमों से खुदा बचाये।'

एक किसान– आये हैं अपने पेट भरने। बहाना कर दिया कि चोरी के माल का पता लगाने आये हैं।

फत्तू– अल्लाह मियां का कहर भी इन पर नहीं गिरता। देखो बेचारों की खानातलाशी हो रही है।

हलधर– 'खानातलाशी काहे की है लूट है। उस पर लोग कहते हैं कि पुलिस तुम्हारे जान-माल की रक्षा करती है।' (पृ० 27-28)

झूठ को सच में बदलना पुलिस विभाग के बायें हाथ का खेल है। नाटक के चौथे अंक के पहले दृश्य में मात्र एक हज़ार रुपये रिश्वत लेकर सबलसिंह के विरुद्ध साजिश रचते हुए इन्सपेक्टर कहता है– 'आजकल बड़े से बड़े आदमी को जब चाहें फांस लें। कोई कितना ही मुअज़िज हो, अफसरों के यहां उसकी कितनी ही रसाई हो, इतना कह दीजिए कि हुजूर, यह भी सुराज का हामी है, बस सारे हुक्काम उसके जानी दुश्मन हो जाते हैं। फिर वह गरीब अपनी कितनी ही सफाई दिया करे, अपनी वफादारी के कितने ही सबूत पेश करता फिरे, कोई उसकी नहीं सुनता।' (पृ० 131) झूठा मुकदमा चलाने के लिए ग्रामीणों से मनमाने बयान लेकर अंगूठे लगवाना और अदालत में क्या कहना है इसकी रिहर्सल करवाना पुलिस के हथकण्डों की पोल खोलता है।

गरीब किसान को लूटकर खाने वाले जमींदार या पुलिस ही नहीं बल्कि सूद पर पैसे देने वाला साहूकार भी है। किसान भी सामाजिक मर्यादा और झूठे प्रदर्शन के नाम पर कर्जा लेता है। उसे एक आशा होती है कि फसल अच्छी है कर्ज चुका लूंगा किन्तु होता इसके विपरीत है। नाटक में हलधर अपनी अच्छी फसल को देखकर मृत पिता की बरसी धूमधाम से मनाने और पत्नी को मायके भेजने के लिए नये गहने बनवाने की इच्छा के रहते कर्ज लेने जाता है। यद्यपि वह जानता है कि 'करज करेजे की चीर है।' (पृ० 22) कंचनसिंह के निम्नलिखित कथन में नाटककार ने किसान की मानसिकता को स्पष्ट किया है– 'यह फसल अच्छी है। तुम लोगों को रुपयों की जरूरत होना स्वाभाविक है। किसान ने खेत में पौधे लहराते हुए देखे और उसके पेट में चूहे कूदने लगे, नहीं तो ऋण लेकर बरसी करने या गहने बनवाने का क्या काम, इतना सब्र नहीं होता कि अनाज घर में आ जाये तो यह सब मनसूबे बांधे।' (पृ० 21)

इस प्रकार संग्राम ग्रामीण जीवन की यथार्थ तस्वीर है जिसमें प्रेमचन्द ने उस समाज के दुर्बल से दुर्बल अंग पर दृष्टिपात किया है। प्रेमचन्द का कथाकार नाटक पर हावी है, नाटक नाटकीय कम कथात्मक अधिक है। उस पर भी प्रसाद के नाटकों की तरह गीतों की भरमार है।

'कर्बला' की रचना तत्कालीन आवश्यकता को लेकर हुई। हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने के प्रयत्न में सहयोग ही इस नाटक की प्रेरणा है। प्रेमचन्द ने 'कर्बला' की भूमिका में कहा है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता तभी स्थापित हो सकती है जब हम एक दूसरे के महापुरुषों और उनके कार्य कलापों से परिचित होवें।' (पृ० 5)

हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का एक कारण यह भी है कि इन्हें एक दूसरे के महापुरुषों का ज्ञान ही नहीं लेकिन अच्छे और बुरे चरित्र सभी समाजों में होते आए हैं-होते रहेगें। किसी भी जाति के महापुरुषों का अध्ययन उस जाति के साथ आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक हो सकता है। हुसैन साहब का चरित्र उदात्त एवं बेहद प्रभावपूर्ण है। प्रेमचन्द ने उर्दू-मिश्रित हिन्दुस्तानी में इसे और प्रभावशाली बनाया है।

नाटक पूरी तरह से ऐतिहासिक एवं धार्मिक दृष्टि से लिखा गया है। ऐसे नाटकों में कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं होता क्योंकि यह घटनाएं सर्व प्रचलित और प्रसिद्ध होती हैं। लेखक ने ऐतिहासिक आधारों को कहीं भी नहीं छोड़ा है। इसमें हुसैन साहब के आत्मबलिदान की कथा है, जो गौरव की बात है। कर्बला के युद्धक्षेत्र में मुहम्मद साहब के दौहित्र और अलि के पुत्र हुसैन का खलीफा पद के लिए संघर्ष और हुसैन साहिब का कारूणिक अन्त वर्णित है। कर्बला के हुसैन और वजीद के रूप में लेखक ने महान् और कुत्सित प्रवृत्तियों का संघर्ष बताया है। हुसैन सत्य और उत्सर्ग की भावनाओं के प्रतीक हैं जबकि यजीद यश का लोभी है।

'प्रेम की वेदी' सात दृश्यों का छोटा सा नाटक है जिसमें प्रेम की महत्ता दिखलाई गई है। प्रेम जाति, धर्म, रस्मोरिवाज सभी बन्धनों से ऊपर है। प्रेमचन्द ने विवाह के लिए धर्म और जातीय बन्धनों को हानिकर माना है।

नाटक में मिस जेनी अपनी सखी उमा के पति पर मुग्ध हो जाती है जबकि जेनी की मां की इच्छा है कि वह विलियम से विवाह करे। विलियम एक कायर और फूहड़ किस्म का युवक है जिसे जेनी

बिल्कुल पसन्द नहीं करती। उमा की मृत्यु हो जाती है तो योगराज समाज की परवाह न करके विवाह-प्रस्ताव जेनी के समक्ष रखता है। विपरीत धर्म के कारण विवाह नहीं हो पाता। वियोग में योगराज की मृत्यु हो जाती है। धर्म के नाम पर हो रहे अत्याचार की भर्त्सना करते हुए जेनी कहती है– 'क्या धर्म इसलिए आया है कि आदमियों की अलग-अलग टोलियां बनाकर उसमें भेद-भाव भर दें? ऐसा धर्म लुटेरों का हो सकता है, मूर्खों का हो सकता है।' (पृ० 49) संकीर्ण मनोवृत्तियों के कारण समाज में जाति भेद, रंग भेद, नस्लभेद पैदा हुए हैं। यद्यपि इन सबको मिटाने के प्रयास भी समाज सुधारकों ने किए हैं किन्तु समाज सुधरा नहीं अपितु भेदभाव बढ़ता ही चला गया। धर्मान्धता पर व्यंग्य करती हुई जेनी कहती है– 'नबी आये, अवतार हुए, खुदा खुद आया, बार-बार आया। नतीजा क्या हुआ? लड़ाई और कत्ल। रंग का भेद, नस्ल का भेद - इन सब भेदों को मिटाने का ठेका लिया धर्म ने, लेकिन वह स्वयं भेद का कारण बन गया। ऐसे भेदों को, जो सब भेदों से कठोर है– मैं कहती हूं, यह धर्म है जिसने हमारे मन को संकीर्ण बना डाला है।' (पृ० 50)

नारी स्वातन्त्र्य की भावना के कारण विवाह संस्था के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण प्रायः शिक्षित युवतियों में आया है। विवाह उनके लिए बन्धन है क्योंकि विवाह के पश्चात् स्त्री, पुरुष की गुलाम हो जाती है, वह चार दीवारी में बंद रहने पर विवश कर दी जाती है। प्रेमचन्द नारी स्वातन्त्र्य के पक्षधर थे। नाटक में जेनी एक शिक्षित युवती है जो विवाह के विरुद्ध है और विवाह को पुरुष-समाज की अधिकार-भावना मानती है। ये संवाद दृष्टव्य हैं– 'जेनी– मैं मर्द की गुलामी पसन्द नहीं करती।

मिसेज गार्डन– शादी करना गुलामी है? वे सभी औरतें जो शादी करती हैं क्या गुलाम है? (पृ० 8)

जेनी– "गुलाम नहीं तो क्या हैं? रानियां हैं वह भी गुलाम हैं। मर्द की दुनिया वह है जहां धर्म है, सम्मान है। स्त्री की दुनिया वह है जहां पिसना, घुलना और कुढ़ना है।" (पृ० 9)

पुरुष समाज ने स्त्री पर अपना स्वामीत्व बरकरार रखा है इसके विपरीत यदि स्त्री ने आत्म सम्मान के प्रति जागरूकता दिखाई तो वह कुल्टा तक कहलाने लगती है। जेनी पुरुष वर्ग की इसी भावना के कारण विवाह नहीं करना चाहती। विवाह के विषय में स्पष्ट शब्दों में कहती है– 'पुरुष विवाह करके स्त्री का स्वामी हो जाता है, स्त्री विवाह करके पुरुष की लौंडी हो जाती है। अगर वह पुरुष की खुशामद करती रहे, उसके इशारों पर नाचती रहे तो उसके लिए रुपए हैं, गहनें हैं, रेशमी कपड़े हैं– लेकिन जरा सी भी स्त्री ने स्वेच्छा का परिचय दिया, आत्मसम्मान प्रकट किया, फिर वह त्याज्य है, कुल्टा है, पुरुष उसे क्षमा नहीं कर सकता।' (पृ० 9)

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द के कथा साहित्य की तरह उनके नाटकों की प्रेरक शक्ति सोद्देश्यता ही है। कथ्य प्रासंगिक हैं हां कुशल अभिनेताओं द्वारा काट-छांट के पश्चात् खेले जाने पर मनोरंजक और उपदेशक हो सकते हैं।

–रीडर, हिन्दी विभाग

जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू

प्रेमचन्द की प्रासंगिकता

डॉ. चंचल शर्मा (डोगरा)

यदा-कदा प्रासंगिकता को लेकर प्रेमचन्द विवादों के घेरे में घिरते रहे हैं। सन् पचास के आसपास अज्ञेय, जैनेन्द्र और इलाचन्द्र जोशी की व्यक्तिवादी चेतना और मनोविज्ञान से युक्त नई कहानी आन्दोलन में प्रेमचन्द के वक्तव्य का अस्वीकार था। उनका कहना था कि जो हमारा अनुभव नहीं , जो हमारी पीढ़ी का अनुभूत सत्य नहीं है, वह हमारे लिए किस प्रकार प्रासंगिक हो सकता है? सन् पैंसठ के मध्य हिंदी कहानी दिग्भ्रमित हुई, आठवें दशक में समानान्तर कहानी आन्दोलन के साथ ही प्रेमचन्द पुनः प्रासंगिकता के कटघरे में खड़े कर दिए गए। आज वैश्वीकरण के दौर में जब बाज़ारवाद के कारण उपयोगिता के आधार पर हर चीज को बिकाऊ प्रोडक्ट (Product) की तरह प्रस्तुत किया जा रहा है ऐसे में प्रेमचन्द को फिर प्रासंगिकता से जूझना पड़ रहा है। आन्दोलन चाहे कोई भी हो प्रेमचन्द की प्रासंगिकता के सम्मुख प्रश्नचिन्ह लगाकर उन्हें खंगाला जाता रहा है। वर्तमान युग के समाज व परिवार का प्रारूप वह नहीं है जो प्रेमचन्द के समय था। संयुक्त परिवार टूटे हैं, रिश्तों के प्रति निष्ठाएं बदली हैं, इकहरे परिवार में जीने वाले रिश्तों की उष्णता

से अनभिज्ञ हैं, कहीं मासी नहीं तो कहीं मामा, चाचा, ताया या बुआ के नाम से भी अपरिचित हैं। जेठ-जिठानी, ननद-भाभी, देवर-भाभी के तानों-तनावों और नोंक-झोंक या स्नेह तो उन्हें मिला ही नहीं। प्रेमचन्द के प्रासंगिक मानने की लंबी शृंखला में एक महत्वपूर्ण कड़ी वर्तमान सामाजिक ढांचे में यह भी हो सकती है। कोई भी मनुष्य या समाज समय निरपेक्ष या शाश्वत नहीं हो सकता। तोल्सतोय, चेखव, शेक्सपियर का समाज भी वर्तमान कालीन समाज नहीं है। उनका साहित्य अपने समय की सच्चाइयों सहित जीवित है। प्रेमचन्द की प्रासंगिकता के संदर्भ में डॉ. कमलकिशोर गोयनका का कथन उपयुक्त है– "प्रेमचन्द एक ऐसे लेखक है जिन्हें जलाकर राख में बदला नहीं जा सकता। क्या आप वाल्मीकि, कालीदास, तुलसी, कबीर, सूर, मीरा, भारतेन्दु, प्रसाद आदि को मार सकते हैं? इन्होंने अपने-अपने देश का अमृतपान किया हुआ है। प्रेमचन्द का गौरव और गरिमा अक्षुण्ण है, उसे आग न जला सकती है, वायु न सुखा सकती है और न ही जल उसे गीला कर सकता है। प्रेमचन्द की साहित्यिक आत्मा की ऐसी शक्ति है।" वैश्वीकरण द्वारा प्रदत्त बाज़ारवाद है अर्थात ऐसे 'प्रोडक्ट' (Product) जो बाज़ार में बिकाऊ हों। जैसा साहित्य आज पाठक की अपेक्षा दर्शक तक मीडिया द्वारा पहुंचाया जा रहा है उससे हममें से कोई भी अपरिचित नहीं है। वह संस्कारी नहीं बनाता, संस्कृति से परिचय नहीं करवाता बल्कि बच्चों और युवाओं के मध्य ऐसी संस्कृति पनपाता है जो हमारी है ही नहीं। यह चिंता का विषय है कि अपने ही देश में, समाज में हम अपनी ही संस्कृति से अनजान हैं, बेगाने हैं। भूमंडलीकरण से जन्मी समस्याओं और उनकी 'काम्पीकेसी' के संकेत प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में स्पष्टतया दे दिए थे।

प्रेमचन्द युग प्रवर्त्तक रचनाकार हैं वस्तुत: वह भारत के पहले ऐसे लेखक हैं जिन्होंने साहित्य में सामंती मानसिकता के परखच्चे उड़ाते हुए एक आम आदमी को कथा नायक के पद पर आसीन किया था। कथा साहित्य में एक नई परम्परा यथार्थ की नींव प्रेमचन्द ने ही रखी थी। अपने युग-बोध को पहचान कर जिंदगी के प्रवाह से जुड़न वाला ही सच्चा प्रगतिशील होता है। उनकी साहित्य यात्रा आदर्श, आदर्शोमुखी यथार्थ से होती हुई कटु यथार्थ तक पहुंची। उनकी सर्जना निरंतर सर्जनात्मक रूप से विकसित होती रही, संस्कार पर विवेक विजयी होता रहा। जिस जीवन का प्रेमचन्द ने चित्रण किया वे उससे प्रत्यक्षत: संबद्ध थे। उन्होंने भारतीय जनता के दु:खमय जीवन का चिंतन बड़ी तन्मयता के साथ किया था, देश की गुलामी हो अथवा उसका अकथनीय दारिद्रय, सामाजिक वैषम्य, मानव सत्य का तिरस्कार, सामाजिक अन्याय की विधायक शक्तियों का विरोध एवं राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रति उनका दृष्टिकोण बहुत ही स्पष्ट था। बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों के साहित्य में दलित-विमर्श एवं नारी-विमर्श मुख्य रूप से उभर कर सामने आए। ये प्रवृत्तियां प्रेमचन्द के साहित्य में उपस्थित थीं। प्रेमचन्द द्वारा उठाए गई सामाजिक कुरीतियां तथा तथ्य आज भी वैसे ही हैं। दहेज का कारण, यातना, हत्या और आत्महत्या की शिकार होती कई 'सुमन', 'निर्मला' और 'रूपा' आज भी विद्यमान हैं। नारी शोषण का इससे बड़ा प्रमाण क्या होगा कि वैश्वीकरण के इस दौर में सशक्तीकरण के कारण उसे आज़ादी और हैसियत तो मिली परन्तु उसकी कार्यदशाएं तथा कार्यस्थल बेहतर न हुए और न ही घर के कामकाज से वह मुक्त हुई। स्त्री की देह, श्रम, छवि, सौंदर्य और कमनीयता का किसी भी काल की अपेक्षा सर्वाधिक दोहन किया गया। दास-प्रथा अथवा सामंती युग से

भी अधिक उसका यौन-शोषण किया गया। वधू बनाने के नाम पर यह यौन-दास है, कॉल गर्ल या चकलेवाली है और यह सब कुछ उसे विदेशों में अरक्षित रहकर करना पड़ रहा है। आंकड़े बताते हैं कि स्त्री-श्रम के नाम पर स्त्रियों के निर्यात द्वारा अरबों-खरबों डालर की रकम कमाई गई है। नारी सशक्तीकरण अवश्य हुआ है पर इस तरह की सशक्त महिलाएं आई.ए.एस अथवा आई.एफ.एस., बड़ी कंपनियों के मैनेजर, फिल्म उद्योग की अभिनेत्रियां, प्रोडयूसर आदि आत्मविश्वास से पूर्ण महिलाएं अंगुलियों पर गिनी जा सकती है। 'सेवासदन' और 'निर्मला' में भारतीय समाज और परिवार में नारी की गुलामी की यातना और उससे मुक्त होने की छटपटाहट है। 'ठाकुर का कुंआ', 'सद्गति' आदि कहानियों में तथा 'गोदान' एवं 'कर्मभूमि' उपन्यासों में दलितों के शोषण, उत्पीड़न, अपमान और विद्रोह की अभिव्यक्ति है। प्रेमचन्द पहले ग्रामीण कथाकार व पहले दलितों के पक्षधर थे। उन्होंने दलितों के जीवन पर उस समय लिखा जब हिन्दी में दलित साहित्य का 'कान्सेप्ट' भी नहीं था। दलित-साहित्य का आन्दोलन सन् 1965 के लगभग सर्वप्रथम मराठी साहित्य में चला। सन् 1900 के आसपास हिंदी में चर्चित हुआ। आज भी दलितों की स्थिति में आशाजनक सुधार नहीं हुआ है। आज भी कभी उन्हें मंदिर में जाने पर प्रताड़ित किया जाता है तो कभी किसी न किसी कारण से उन्हें अपमानित करने का अवसर छोड़ा नहीं जाता। उन्हें अपनी स्थिति बेहतर बनाने के लिए राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय पूंजी के खिलाफ खड़े होना होगा जिससे उन्हें न्याय और समता का वृहत् सिद्धान्त मिल सके। 'होरी' कृषक-वर्ग एवं दलित-वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है 'हारी' महतो है और आज भी महतो शब्द बिहार तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में अनुसूचित जाति का सूचक है तथा 'गोदान' के समय भी

था। 'होरी' के दलित होने का प्रमाण 'दातादीन' के इस वाक्य से हो जाता है– "तुम शूद्र हुए तो क्या, हम ब्राह्मण हुए तो क्या, हैं तो सब एक ही घर के।" (गोदान–पृ० 192) अथवा 'सीलिया के साथ रहे दुर्व्यवहार तथा अन्याय के प्रतिरोध स्वरूप 'सीलिया' के बाप 'हरखू' का दातादीन को यह कहना– "हम आज या तो दातादीन को चमार बना के छोड़ेंगे या उनका और अपना रक्त एक कर देंगे..... तुम हमें ब्राह्मण नहीं बना सकते, मुदा हम तुम्हें चमार बना सकते हैं..... हमारी इज्जत लेते हो तो अपना करम हमें दो।" (गोदान– पृ० 281)

जाति और धर्म के आधार पर अम्बेडकर और गांधी जी उस समय दलितों की आवाज सुन रहे थे तो साहित्य में प्रेमचन्द ही अपनी रचनाओं में किसानों, दलितों एवं मजदूरों की समस्त विडम्बनाओं को अभिव्यक्त कर रहे थे। यद्यपि गांधी जी के 'हृदय परिवर्तन' सिद्धान्त के प्रति प्रेमचन्द की निष्ठा काफी समय तक रही। 'नमक का दरोगा', 'आत्माराम', 'बड़े घर की बेटी', 'बूढ़ी काकी', 'अमावस्या की रात्रि', 'पछतावा', 'दुस्साहस', 'पंचपरमेश्वर', 'दुर्गा का मंदिर', 'ममता' आदि कई कहानियां डर अथवा सुरक्षा की भावना से अन्यायी, अत्याचारी या गलत व्यक्ति का हृदय परिवर्तन कर देती है; परन्तु जीवन की सांध्य बेला में गांधीवाद के प्रति उनका मोह भंग हो गया था। गांधीवादी आदर्श की भांति 'रंगभूमि' उपन्यास में ही प्रमाणित हो गई थी। उनका कोई भी आदर्श 'सूरदास' की छिनती हुई जमीन को बचा नहीं पाता और उभरते हुए पूंजीवाद द्वारा वह लील ली जाती है और आज बड़ी कंपनियां छोटी कंपनियों को निगल रही है। साम्राज्यवाद, देशी सहायकों, पूंजीवाद तथा सामंतवाद के षड्यंत्र को प्रेमचन्द बेनकाब करते हैं। 'ठाकुर का कुंआ', 'पूस की रात', 'दूध का दाम', 'कफन', 'मुक्तिमार्ग', 'गुल्ली डंडा',

'नशा', आदि ऐसी ही कहानियां हैं। उन्होंने इस सत्य का खुलेआम उद्घोष किया था कि समाज दो हिस्सों में विभाजित है जिसका बड़ा हिस्सा यातनाओं से प्रताड़ित मरने वालों का है दूसरा छोटा हिस्सा ऐश्वर्य व आरामदायक जिंदगी बिताने वालों का। यहीं वे व्यक्तिगत संपत्ति पर आधारित पूंजीवाद का विरोध करते हुए उसे जड़ से उखाड़ने का आह्वान करते हैं। उनका यह विश्वास दृढ़ हो गया था कि जिंदगी की ज़हालत के लिए आर्थिक व्यवस्था ही उत्तरदायी है। आर्थिक व्यवस्था शोषित की नियति की ज़िम्मेदार है। 'सुजानभगत' में इसी तथ्य को अभिव्यक्ति मिली है कि वही व्यक्ति महत्त्वपूर्ण है जिसका इस अर्थधारित व्यवस्था में आय के स्रोत पर अधिकार है। जाति और धर्म के नाम पर विभाजित करने वाली शक्तियां आज भी उसी तरह कार्यरत् है जिसे तरह प्रेमचन्द के समय में थी तथा जिनके विरुद्ध प्रेमचन्द ने संघर्ष किया था उसे निरंतर जारी रखने की जरूरत आज सर्वाधिक है।

सांप्रदायिक सौहार्द उनकी आस्था में निहित था। सांप्रदायिक सौहार्द का मूल्य वे इसलिए जानते थे क्योंकि वे देश की जड़ों से जुड़े थे। 'मनुष्यता का अकाल', 'सांप्रदायिकता और संस्कृति', 'हिन्दू मुस्लिम एकता' जैसे उनके निबंध तथा कथा साहित्य में सांप्रदायिकता के विरुद्ध धर्मनिरपेक्ष पात्रों के तर्क केवल औपचारिकता लिए हुए नहीं हैं। हंसराज रहबर के अनुसार "उनके धार्मिक विचार कुछ भी रहे हो, वे जन साधारण की धार्मिक भावनाओं का आदर करते थे और उन्हें एक आस्तिक की श्रद्धा के साथ अंकित करते थे क्योंकि वे जानते थे कि शोषित जनता के पास एक धर्म ही तो है जो इस भीषण दरिद्रता में जीने का बल प्रदान करता है यदि उनसे यह भी छीन लिया जाए तो फिर उनके पास और कौन सा सहारा रह जाएगा।" प्रेमचन्द के साहित्य में

हिंदू, मुसलमान, इसाई सभी धर्मों और संप्रदायों के अच्छे बुरे पात्र बन पाए है। 'न मैं हिन्दू हूं और न मुसलमान, मैं एक इन्सान हूं।' इसीलिए वे साहस के साथ कह सके थे। साम्प्रदायिक सौहार्द का प्रश्न उनके यहां राष्ट्रीय मुक्ति से चलकर शोषित मनुष्यता की मुक्ति से होता हुआ सर्वहारा संस्कृति तक व्यापक हो जाता है।

प्रेमचन्द विशिष्ट साहित्यकार होने के साथ-साथ एक सजग विचारक व चिंतक भी थे। योरोप में निरस्त्रीकरण की प्रगति पर की गई उनकी टिप्पणी में गंभीर व्यंग्य झलकता है। फौजी हथियारों की कमी के विवरण यदि 'कमी' की यह प्रगति है तो वृद्धि की क्या प्रगति होगी। 27 नवम्बर 1933 को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर लिखते हुए उन्होंने मानव संस्कृति और जीवन के लिए अन्तर्राष्ट्रीयता को उच्च आदर्श स्वीकार किया था। 'वसुधैव कुटुम्बकं' इसी आदर्श का परिचायक है। अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के विकास का मुख्य आधार द्विपक्षीय या बहुपक्षीय आर्थिक संबंध हैं, अर्थात् जिस देश के साथ हमारा जितना ज्यादा व्यवहार होगा वह उतना ही हमारे समीप आ जाएगा किन्तु इतिहास साक्षी है कि पूंजीवादी और साम्राज्यवादी देशों ने बराबर गरीब देश जिसे आज हम नई शब्दावली में विकासशील देश कहा करते हैं, उनका शोषण किया है।

(प्रेमचन्द और सामाजिक चेतना के विभिन्न आयाम–भक्तराम शर्मा)

इसी संदर्भ में लंदन के एक 'फोर्टनाइटली रिव्यू' के एक लेख पर उनकी टिप्पणी थी कि इस लेख के विद्वान ने ठीक ही सुझाया है कि आर्थिक देश में मंदी का मुख्य कारण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार है। जिसके

कारण सब देशों को दूसरे देशों में बाज़ार ढूंढना पड़ता है, प्रतियोगिताओं के बढ़ने पर मालवाह जहाजों की सुरक्षा के लिए सैनिक जहाज़ रखने पड़ते हैं। फिर लड़ाइयां होती है और अंततः सुलह के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन किए जाते हैं। प्रेमचन्द ने अपनी बेबाक शैली में कहा कि पूंजीपतियों को तो धन चाहिए और धन की खपत के लिए निर्धन देशों का होना जरूरी है।'

(प्रेमचन्द और सामाजिक चेतना के विभिन्न आयाम–भक्तराम शर्मा)

इसी संदर्भ में लंदन के एक 'फोर्टनाइटली रिव्यू' के एक लेख पर उनकी टिप्पणी थी कि इस लेख के विद्वान ने ठीक ही सुझाया है कि आर्थिक देश में मंदी का मुख्य कारण अर्न्तर्राष्ट्रीय व्यापार है। जिसके कारण सब देशों को दूसरे देशों में बाजार ढूंढना पड़ता है, प्रतियोगिता के बढ़ने पर मालवाह जहाजों की सुरक्षा के लिए सैनिक जहाज़ रखने पड़ते हैं। फिर लड़ाईयां होती है और अंततः सुलह के लिए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन किए जाते हैं। प्रेमचन्द ने अपनी बेबाक शैली में कहा कि पूंजीपतियों को तो धन चाहिए और धन की खपत के लिए निध 'न देशों का होना जरूरी है।'

(प्रेमचन्द और सामाजिक चेतना के विभिन्न आयाम–भक्तराम शर्मा)

उपर्युक्त विवेचन के अलावा प्रेमचन्द को कालजयी बनाने वाले उनके साहित्य में रचे-बसे मानवीय व शाश्वत मूल्य है। स्थितियां और इतिहास परिवर्तित होते रहते हैं परन्तु मनुष्य एवं उसके संबंधों के संदर्भ, तनाव व जुड़ाव शेष बचे रहते हैं। हर समय और हर देश का केन्द्रीय

बिन्दु मनुष्य ही होता है। मानवीय कल्याण, उदारता, क्षमाशीलता, सहिष्णुता तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में संघर्ष करते रहने की प्रवृत्ति ही शाश्वत मूल्यों के अंतर्गत आती है। ये मानव जीवन की चिरस्थाई प्रवृत्तियां है। प्रेमचन्द के साहित्य में ये प्रवृत्तियां सहज ही अनुस्यूत हुई है। उन्होंने किसानों की पीड़ा, मज़दूरों का दर्द और वंचितों की याचना को गहराई से महसूस किया। उनका मानवतावादी दृष्टिकोण उन्हें विशिष्ट बनाता है। राजेन्द्र यादव का कथन है कि प्रेमचन्द की साहित्यिक आत्मा-यातना और संघर्ष ही उन्हें कालजयी बनाते हैं। "यातना और संघर्ष ही वे तत्व हैं जो एक ओर समय की सीमाएं तोड़कर किसी रचना को हम तक लाते हैं तो दूसरी ओर भूगोल के अक्षांस और देशान्तर भेदकर रचना को हमारा बनाते हैं।"

(प्रेमचन्द की विरासत–राजेन्द्र यादव पृष्ठ 19)

'होरी' यातना और संघर्ष की गहरी त्रासदी है।

मानव जाति के प्रति गहन संवेदना की अभिव्यक्ति के कारण ही प्रेमचन्द का साहित्य भारत ही नहीं वरन् भारत के बाहर भी सम्मान व आदर से पढ़ा जाता है आज सोवियत संघ, पोलैंड, चेकोस्लोवाकिया, हंगरी, मारीशस, फिजी, सूरीनाम, त्रिनिदास, यू.के. जापान आदि में प्रेमचन्द के अनेक पाठक व प्रशंसक है। इस प्रकार उनकी रचनाएं देश काल की सीमा पार कर मानव समाज की धरोहर बन गई है। वर्मा में प्रेमचन्द नामक लेख में डॉ. ओम प्रकाश का कहना ह कि 'कफन', 'शतरंज के खिलाड़ी' तथा 'पंचपरमेश्वर' जैसी कहानियों के पात्र किसी भी देश या काल के हो सकते हैं। वे भारतीय ही हो ऐसा आवश्यक नहीं है। बर्मी लोगों को यह लगता है कि मानों ये चरित्र जैसे उनके ही समाज

के हों। "प्रेमचन्द की विचारधारा ने बर्मी साहित्य को भी प्रभावित किया है। उनका मानवतावादी दृष्टिकोण, गरीब व पिछड़े वर्ग, किसानों आदि पर अत्याचार और उनके निराकरण करने वाली दृष्टि का प्रभाव यहां के लेखकों पर सामान्य रूप से पड़ा है।"

(बर्मा में प्रेमचन्द–डॉ. ओम प्रकाश)

जापान में एक रेलवे कर्मचारी गोदान से इतना प्रभावित हुआ कि उसने प्रेमचन्द की सभी पुस्तकें मंगवा कर अपने घर में ही 'प्रेमचन्द पुस्तकालय' की स्थापना की।

जिसके साहित्य में उदारता से परिपूर्ण मानवतावादी दृष्टिकोण हो, जो साम्प्रदायिकता का कटु आलोचक हो, जिसे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की परख हो, जिसे देश काल की सीमाएं बांधती न हो वह अप्रासंगिक कैसे हो सकता है?

और अंत में भारतीय उच्चायोग त्रिनिदाद में हिन्दी अधिकारी डॉ. हरदयाल गुप्त की ये पक्तियां प्रेमचन्द की कालजयी होने की पुष्टि करती हैं–

"और मैं अपनी छात्रा श्रीमती सुमित्रा उमरावसिंह (वरिष्ठ विज्ञान प्राध्यापिका पोर्ट ऑफ स्पेन) को आज तक यह नहीं समझा सका कि वे, उनके पिता और भागिनेय वही क्यों सोचते हैं जो प्रेमचन्द सोचते थे। भावना के क्षेत्र में तीन पीढ़ियों के इस विश्वास के ऊपर दुनिया के किसी कोने में जब तक वेदना का एक भी कण रहेगा, प्रेमचन्द को आऊट 'डेटिड' कहना मनुष्य के भविष्य को झुठलाने जैसा होगा।"

(करेबियन देशों में प्रेमचन्द–डॉ. हरदयाल गुप्त)

संदर्भ सूची

1. वर्तमान साहित्य शताब्दी कथा विशेषांक – जनवरी-फरवरी 2000

2. प्रेमचन्द की विरासत का सवाल – शिवकुमार मिश्र
वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002, मूल्य 175/-
प्रथम संस्करण - 1994

3. प्रेमचन्द की विरासत – राजेन्द्र यादव
सामयिक प्रकाशन, 3320-21,
जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग,
दरियागंज, नई दिल्ली-110002,
मूल्य 200/-
संस्करण - 2006

4. गोदान-विमर्श – ज्ञानचन्द गुप्त
नमन प्रकाशन, 4231/1,
अंसारीरोड, दरियागंज,
नई दिल्ली - 110002,
मूल्य 350/-,
प्रथम संस्करण-2006

5. प्रेमचन्द और सृष्टि – संपादक डॉ. चन्द्रकांत बांदिवाडेकर
प्रकाश-न.ना. मंदसोरवाले, सचिव,

महराष्ट्र राष्ट्र भाषा सभा,
पो.बा. 706, नारायण पेठ,
पुणे - 411030
प्रथम संस्करण - 1981

6. समकालीन भारतीय साहित्य - साहित्य अकादमी की द्विमासिक पत्रिका, जनवरी-फरवरी - 2006, मूल्य 25/-

7. गगनाञ्चल - प्रेमचन्द अंक - 1980

8. भारत का भूमंडलीकरण - अभय कुमार दुबे

वर्तमान युग में प्रेमचन्द के उपन्यासों की प्रासंगिकता

–डॉ0 दिलशाद जीलानी

"वास्तव में कोई भी रचना तभी सार्थक, प्रासंगिक और स्वीकार्य होती है जब वह समकालीन जीवन और चिन्तन को प्रभावित करती है। प्रेमचन्द का लेखन आज भी प्रासंगिक और सार्थक है।"1 क्योंकि प्रेमचन्द ने अपने युग से प्रेरणा लेकर सामान्य जनता एवं कृषकों के ग्रामीण जीवन को अपने उपन्यासों का आधार स्तम्भ बनाया। हम उनके सभी उपन्यासों में ग्राम्य-जीवन का सजीव एवं उत्कृष्ट झलकियाँ देखते हैं। वर्तमान समाज में जमींदारी प्रथा अवश्य बन्द हो गयी है लेकिन आज भी हम गाँवों में किसानों की वही स्थिति देखते हैं जो प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में वर्णित की है। आज केवल समस्या का मुखौटा बदल गया है, पर वास्तव में समस्यायें मूल में वैसी ही ज्वलन्त हैं। जमींदारों के बदले आज महाजन, पुलिस, पुरोहित व उच्च वर्ग के अन्य व्यक्ति किसानों का शोषण कर रहे हैं, पर परोक्ष रूप में। अत: प्रेमचन्द के उपन्यासों में प्रासंगिकता स्वाभाविक रूप में आ गयी हैं।

प्रेमचन्द के प्रति भारतीय समाज का आदर कभी कम न होगा। वह इसलिए कि भारत की अपनी जमीन से प्रेमचन्द कभी नहीं हिले, टूटे नहीं, और साहित्य को सामाजिक दायित्व से उन्होंने कभी मुक्त नहीं होने दिया। उन्होंने जानबूझ कर परम्पराओं को तोड़ने का प्रयत्न नहीं किया, उन्होंने आँखें बन्द कर परपम्राओं का पालन भी नहीं किया। परम्पराओं से उन्होंने वही बात ग्रहण की, जो उनकी दृष्टि में परिवर्तित परिस्थितियों एवं समकालीन वातावरण में प्रगतिशील एवं उपयोगी थीं। उन्होंने प्रेम, विवाह एवं धर्म के सम्बन्ध में प्रगतिशील विचारों का ही अनुगमन किया है। उनका विचार था कि हमारे पथ में अहंवाद अथवा अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण को प्रधानता देना वह वस्तु है, जो हमें जड़ता, पतन और लापरवाही की ओर ले जाती है और ऐसी कला हमारे लिए न व्यक्ति रूप में उपयोगी है और न समुदाय रूप में, क्योंकि साहित्य की प्रवृत्ति अहंवाद या व्यक्तिवाद तक परिमित नहीं रही।

वे एक ठेठ भारतीय लेखक थे जो अपने जीवन काल में ही क्लासिक बन चुके थे। प्रेमचन्द का महत्व यह है कि वे हमारे क्लासिक होने के साथ ही हमारे सर्वाधिक आधुनिक और सन्दर्भवान लेखक भी हैं। अपनी रचनाओं में वे अपने युग के सम्पूर्ण भारतीय समाज की लोक चेतना के साथ इतनी गहराई के साथ जुड़े हुए थे कि हम उनमें किसी एक पक्ष का नहीं बल्कि उसकी संपूर्ण समग्रता का साक्षात् करते हैं।

उनकी कलम से कोई भी नहीं बचा। वे पात्रों की व्यापक विविध ता का एक संसार रचते हैं जिससे समाज के सभी वर्गों की परतें हमारे सामने उतरती चली हैं। हमारे सामने पूरे एक हिन्दुस्तान की तस्वीर खुलती है। वह प्रेमचन्द के रचना-संसार का ही हिन्दुसतान नहीं, हम

सब का हिन्दुतान होता है लेकिन एक ऐसा हिन्दुस्तान जिसे हम पहले नहीं जानते थे। उनकी हर रचना पढ़ने के बाद हम वही नहीं रह जाते जो पहले थे। हम अपने देश को और करीब से देखने लगते हैं, उसे और अधिक गहराई से समझने लगते हैं। प्रेमचन्द यह कैसे कर पाए? निश्चित ही यह एक बहुत बड़ी ताकत वाला लेखक ही कर सकता है और यह ताकत समझौतों से नहीं आती। यह उस रचना-दृष्टि से आती है जो जीवन की कुरुपताओं को ढकती नहीं है और न उन्हें उकेर कर उनमें आनन्द लेती हैं, बल्कि उन कुरुपताओं के लिए दोषी समाज की शोषण संस्थाओं को पहचान कर उन पर निर्मम प्रहार करती है।

प्रेमचन्द ने अपने साहित्य के द्वारा एक युगान्तर ही उपस्थित कर दिया था। उनकी कृतियों के माध्यम से ही साहित्य और समाज का सीधा नाता जुड़ा। आज उनकी मृत्यु के पश्चात् भी उनकी कृतियों पर विचार करना, जन्म शताब्दी मनाना ही उनकी कृतियों की प्रासंगिकता का सबसे बड़ा प्रमाण है। आज भी उनकी कृतियों को पूरे विश्व में गत युगों की अपेक्षा अधिक समझा, सराहा और चाहा जा रहा है। प्रेमचन्द की रचनाएँ अपनी समकालीन पीढ़ी के विभिन्न संघर्षों को उभारती हैं और आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणास्रोत बनती हैं।

वस्तुतः किसी भी रचना को प्रासंगिक तभी मानना पड़ेगा जबकि उसमें वर्तमान युग की सामाजिक एवं जातीय ज्वलन्त समस्याओं (जैसे उच्चवर्ग की शोषण-प्रवृत्ति, विधवा-समस्या, अनमेल-विवाह, वेश्या-समस्या, छुआ-छूत, वर्ग-संघर्ष आदि) का चित्रण होगा। प्रेमचन्द के युग के जीवन और आज के जीवन में कौन से आमूल परिवर्तन हुए हैं, ऐसा देखने के लिए आवश्यक है कि हम प्रेमचन्द उपन्यास साहित्य को

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और आज के युग के परिप्रेक्ष्य, दोनों में देखें। किसी भी कालजयी रचनाकार की परख और उसकी प्रासंगिकता को समझने का यही उच्च तरीका है।

'निर्मला' उपन्यास भारतीय समाज की एक दर्दनाक कारूणिक कथा है, जिसमें अर्थ से अधिक महत्त्व कुसंस्कारों को दिया गया है।"[2] उपन्यास में उदयभानु शादी में अत्यधिक खर्च करना चाहते हैं। वर्तमान आधुनिक समाज में भी यह कुप्रथा प्रचलित है। अब अन्तर यह है कि पहले व्यक्ति अधिक सोचे समझे, देखे-बिना आँख-मूँद कर खर्च करता था, लेकिन आज वह जरा संभल कर खर्च करता है। इस उपन्यास की मूल-समस्या दहेज-प्रथा है। उदयभानु की मृत्यु के कारण लड़केवाले निर्मला से शादी का समबन्ध तोड़ देते हैं। कारण–कि अब दहेज में कुछ नहीं मिलेगा। इसी दहेज समस्या के कारण निर्मला की माँ उसका ब्याह एक अधेड़ व्यक्ति से कर देती है क्योंकि बाकी सभी वर शादी में दहेज माँगते हैं।

आज भी हमारे समाज में यह कुप्रथा प्रचलित है कि दहेज न जुठा पाने के कारण अति सुन्दर, सुशिक्षित व योग्य लड़कियाँ किसी अनमेल व्यक्ति से बाँध दी जाती हैं। 'निर्मला' उपन्यास में लेखक स्वयं कहते हैं– "दोनों की सूरतों में कितना अन्तर था, एक रत्न जटित विशाल भवन था, दूसरा टूटा-फूटा खंडहर।"[3]

यहाँ उपन्यासकार ने दहेज-प्रथा के कारण होने वाले बेमेल विवाह की ओर संकेत किया है। वर्तमान समाज में भी धार्मिक रिवाजों, दहेज-प्रथाओं आदि के कारण भी अनमेल विवाह होते हैं। पर इनकी

संख्या पहले की अपेक्षा कम हो गई है। कहीं-कहीं तो दहेज पूर्णतः न देने के कारण आज भी किसी स्त्री को जिन्दा जला दिया या खत्म कर दिया जाता है।

प्रेमचन्द ने 'सेवासदन' में "मानवीय भोगवादी प्रवृत्ति का शिकार — नारी के जीवन विषयक वेश्या समस्या को उठाया है।"[4] इसका कारण वे दहेज-प्रथा, पुरुष की वासना, नारी की आर्थिक विषमता व अन्य सामाजिक कुप्रथाएं मानते हैं। उस समय वेश्या-प्रथा प्रचलित थी। आज कानूनी तौर पर उसे निषिद्ध कर दिया गया है। फिर भी चोरी-छिपे आज भी समाज में वेश्या-वृत्ति चल रही है।

प्रेमचन्द ने सुमन के द्वारा वर्तमान आधुनिक समाज में नारी की परतन्त्र एवं दीन-स्थिति का चित्रण किया है। वेश्या समस्या को हल करने के लिए उन्होंने नारी की आत्म-निर्भरता एवं शिक्षा पर महत्त्व दिया है। यद्यपि आज वेश्या-समस्या को हल करने के लिए राजनीतिज्ञों ने कई समाधान निकाले हैं लेकिन उन्हें व्यवहारिक रूप न दिया गया; क्योंकि उससे कई महानुभवों की ऊपरी कमाई मारी जाती है। यही कारण है कि आज यह समस्या प्रेमचन्द युग के समान ही नहीं बल्कि और भी ज्वलन्त है। अतः इस उपन्यास को युगीन व प्रासंगिक माना जा सकता है।

'गबन' उपन्यास में "स्त्रियों के अत्याधिक आभूषण-प्रेम तथा मिथ्या वैभव प्रदर्शन की कुप्रवृत्ति के संयोग में जिस अनर्थकारी परिणाम की सृष्टि होती है उसकी कथा बड़े मार्मिक ढंग से इसमें कही गई है।"[5] उपन्यास के आरम्भ में ही लेखक जालपा के आभूषण के प्रति प्रेम को

स्पष्ट दिखाते हैं। वह बाद में रमानाथ से अपनी हैसियत से ज्यादा कीमती गहनों के लिए तकाजा करती है जिसके फलस्वरुप वह गबन करता है और पुलिस द्वारा पकड़े जाने के भय से भाग जाता है।

वर्तमान युग में भी भारत की स्त्रियों का गहनों के प्रति अत्यधिक लगाव है। आज भी शादी में सबसे ज्यादा रुपए गहनों पर ही खर्च किये जाते हैं। चाहे कर्ज लेना पड़े या कोई वस्तु गिरवी रखनी पड़े। इस उपन्यास में लड़के वाले गहनों के लिए पैसे देते हैं। वर्तमान समाज में वधू पक्ष ही इसका प्रबन्ध करता है। लेखक भारतवासियों के गहनों के प्रति प्रेम को रमेश द्वारा बतलाते हैं- "गहनों का मरज न जाने इस दरिद्र देश में कैसे फैल गया। जिन लोगों के भोजन का ठिकाना नहीं वे भी गहनों के पीछे प्राण देते हैं।"[6]

'गबन' उपन्यास लिखने में प्रेमचन्द के दो उद्देश्य निहित हैं। एक ओर वे मध्य-वर्ग का यथार्थ जीवन चित्रित करना चाहते हैं और दूसरी ओर पुलिस के कारनामों का पर्दाफाश करके उनकी वास्तविकता से हमें परिचित कराना चाहते हैं।"[7] इस उपन्यास में पुलिसवालों के कारनामों का सुन्दर परिचय दिया है। रमानाथ निरपराध था फिर भी पुलिस उसको धोखे में रखती है और उससे झूठी गवाही दिलवाती है। आज भी पुलिसवाले जनता पर अत्याचार करते हैं।

'गबन' उपन्यास में भारतीय नारी की सूझ-बूझ तथा कर्त्तव्य-निष्ठता का भी वर्णन है। उपन्यास में जालपा को जब ज्ञात होता है कि रमानाथ को दफ्तर में पाँच सौ रुपये देने हैं, वरना गिरफ्तार हो जायेगा। तो वह अपना चन्द्रहार बेचकर रुपये दफ्तर में दे देती है। वह अपने गहनों की

वासना को कोसती है। इसके पश्चात् वह स्वयं पति को सीधे रास्ते पर लाती है। वर्तमान समाज में पत्नियां कर्त्तव्य-निष्ठ होती जा रही हैं।

उपन्यासकार ने सरकारी अफसरों की रिश्वत की आदत पर भी प्रकाश डाला है। दीन दयाल का वेतन केवल पाँच रुपये है, फिर भी वह मजे में रहता है। रमानाथ भी अपने आफिस में जी-भर कर रिश्वत लेता है।

हमारे समाज में भी घूस लिया जाता है। लेकिन उसे घूस न कहकर 'चन्दे' का रूप दिया गया है।

यहाँ तक कि मन्दिरों में भी चढ़ावे को देखकर अन्दर जाने दिया जाता है। अत: "परिस्थितियाँ किस प्रकार पात्रों को प्रभावित करती हैं तथा पात्रों पर परिस्थितियाँ का कैसा स्वाभाविक प्रभाव पड़ता है। तथा ये दोनों (परिस्थितियाँ एवं पात्र) एक दूसरे से अविच्छिन्न रहकर किस प्रकार विकसित होते हैं। इसका सुन्दर स्वाभाविक निरूपण इस उपन्यास में प्राप्त होता है।"[8]

"प्रेमचन्द शताब्दियों से पददलित , अपमानित और उपेक्षित कृषकों की आवाज थे।"[9] 'गोदान' में उन्होंने मूलत: कृषकों की दीन अवस्था का अत्यन्त मार्मिक यथार्थवादी चित्रण किया है। यहाँ उन्होंने आदर्शवाद को छोड़कर नग्न यथार्थ को प्रकट किया है। इसमें भूमिधर किसान के भूमिहीन श्रमिक हो जाने की प्रक्रिया और उसके -बौद्धिक प्रतिक्रिया की कहानी है। जमींदारी-उन्मूलन के पश्चात् भी पूँजीवाद के प्रतिनिधि दातादीन जैसे महाजन आज भी हैं। अत: अब मात्र शोषण-तन्त्र की दिशा बदल गयी है।

यहाँ मातादीन-सिलिया का प्रसंग भी आता है। लेकिन मातादीन समाज के डर से उसका त्याग कर देता है क्योंकि सिलिया चमार है। इसके लिए उसे अपनी शुद्धि करनी पड़ती है। इससे उसको अपने समाज से घृणा हो जाती है और फिर निर्भय होकर सिलिया के साथ रहने लगता है। यहाँ लेखक ने अस्पृश्यता की समस्या से साक्षात् करा के पुरोहित वर्ग की पोल खोली है। मातादीन कहता है-"मैं बाह्मण नहीं चमार रहना चाहता हूँ। जो अपना धर्म पाले वही ब्राह्मण है, जो धर्म से मुँह मोड़े वही चमार है।"[10] यहाँ प्रेमचन्द ने अपने युग से आगे आने वाले युग की ओर संकेत किया है। जहाँ जातीयता का भेद समाप्त होकर ब्राह्मण चमार से भी शादी करने लगेंगे। यहाँ उन्होंने सामाजिक क्रान्ति की ओर संकेत किया है।

होरी प्रेमचन्द के युग का प्रतिनिधि है। लेकिन प्रेमचन्द ने अपने से आगे वाली पीढ़ी के प्रतिनिधि के रूप में गोबर को चुना है। उसे हम आरम्भ से ही विद्रोही स्वभाव का पाते हैं। आधुनिक युवक की तरह वह शहर की ओर आकृष्ट होता है। वह अपना रहन-सहन भी आधुनिक कर लेता है। वह जब गाँव आता है तो गाँव के शोषकों के विरुद्ध आवाज भी उठाता है।[11] इस प्रकार वर्तमान युग में किसान होरी की तरह मूक नहीं रहता, बल्कि गोबर की तरह विद्रोही है।

'गोदान' परोक्ष रूप से क्रान्ति की आवाज उठाती है। "गोदान" में नारी जाग उठी है, किसान जाग उठा है, आत्मा जाग उठी है। 'गोदान' के कर्त्तव्यशील किसान अधिकार माँगते हैं, कर्त्तव्यशील नारी प्रेम माँगती है, कर्त्तव्यशील आत्मा सबका सुख मांगती है।"[12] "वस्तुतः 'गोदान' तद्युगीन सामाजिक-आर्थिक स्तर पर मानवीय सम्बन्धों के संघर्ष,

आशा-निराशा, इच्छा-आकांक्षा, आक्रोश-विद्रोह आदि की वृहत् भूमि है।"[13]

इस प्रकार प्रेमचन्द ने होरी के द्वारा अपने समय के कृषक वर्ग का चित्रण तो किया है, लेकिन साथ ही उन्होंने गोबर को वर्तमान समाज के विद्रोही प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत भी किया है। फलतः 'गोदान' में प्रेमचन्द ने युगीन समस्याओं के साथ वर्तमान समाज का वर्णन किया है। अतः 'गोदान' में सामयिकता निहित है।

'प्रेमाश्रम' और 'कर्मभूमि' उपन्यास में भी मूलतः किसानों का जमींदारों द्वारा किये गये शोषण का मार्मिक चित्रण है। कृषक शोषण के अतिरिक्त 'कर्मभूमि' उपन्यास का आरम्भ आधुनिक शिक्षा प्रणाली की आलोचना से होता है। "हमारे कालेजों और स्कूलों में जिस तत्परता से फीस वसूल की जाती है, शायद मालगुजारी भी उतनी सख्ती से वसूल नहीं की जाती है।"[14] वर्तमान समाज में स्कूलों-कालेजों की फीस कितनी ज्यादा है, कुछ मे तो ऊँची फीस के माध्यम से एक प्रकार का व्यापार सा चलता है। आज अवश्य उच्च वर्ग शिक्षा की महत्ता को समझने लगा है। इसका एक कारण यह भी है कि शिक्षा के द्वारा व्यक्ति व्यापार में कुशल हो जाता है।

"रंगभूमि" उपन्यास में प्रेमचन्द ने पूँजीवादी शोषण को औद्योगीकरण के माध्यम से स्पष्ट किया है। उनका उद्देश्य मजदूरों को कम-से-कम परिश्रामिक देकर अधिक से अधिक धन इकट्ठा करना हो गया है।"[15] इस पूँजीवादी व्यवस्था के प्रतिनिधि जानसेवक जमीन हथियाने के लिए सभी हथकंडे इस्तेमाल करते हैं। वर्तमान युग में तो हमें औद्योगिकरण के

कई उदाहरण मिलते हैं। पूरे भारत में हर जगह वृहद कारखाने हैं। इनके माध्यम से पँजीवादी मुनाफा तो कमाते हैं, लेकिन मजदूरों को निम्नतम तनख्वाह देना चाहते हैं यही कारण है कि हम आये दिन अखबारों में तनख्वाह कम होने के कारण मजदूरों की हड़तालों के बारे में पढ़ते रहते हैं। वर्तमान समाज इसे स्पष्ट समझ गया है। इसी कारण आज हर मिल मजदूरों के यूनियन हैं।

वस्तुत: प्रेमचन्द आज भी हमारे सर्वाधिक आधुनिक और संदर्भवान लेखक हैं। अपनी रचनाओं में वे अपने युग के संपूर्ण भारतीय समाज की लोक चेतना के साथ इतनी गहराई के साथ जुड़े हुए थे कि हम उनमें उनके किसी एक पक्ष का नहीं बल्कि उसकी संपूर्ण समग्रता का साक्षात् करते हैं।

फलत: प्रेमचन्द के बाद भी उनकी रचनाएँ अपनी प्रासंगिकता और विशिष्टता बनाए हुई हैं। आज भी उनके साहित्य को बड़े चाव और उत्साह से पढ़ा जाता है। पुस्तकालयों में अभी भी प्रेमचन्द के उपन्यास और कहानी-संग्रह आसानी से नहीं मिलते। कहीं कोई भूख है जिसे प्रेमचन्द की रचनाएं आज भी शांत कर पाती हैं। हिन्दी के अभी तक वह एक मात्र लेखक हैं जिन की रचनाओं का अनुवाद बड़े पैमाने पर भारत की लगभग सभी भाषाओं में तथा अनेक विदेशी भाषाओं में हो चुका है। आज भी उनकी रचनाओं की मांग है। पाठकों के लिए आज भी प्रेमचन्द की रचनाओं का महत्त्व है, उनसे उन्हें बहुत कछ प्राप्त होता है, इसीलिए हिन्दी साहित्य का पाठक अभी भी सबसे पहले उन्हीं की रचनाओं की ओर उन्मुख होता है।

इस प्रकार जो प्रेमचन्द ने अपनी लेखनी के माध्यम से तब व्यक्त किया था वह आज भी उसी रूप में हो रहा है। केवल नाम बदल गये हैं, स्थितियां बदल गई हैं। हमारे वर्तमान जीवन का यथार्थ प्रेमचन्द के जमाने के यथार्थ में कोई आधारभूत अन्तर नहीं है। "वर्तमान युग का, वर्तमान युग की गंभीर भावनाओं तथा समस्याओं का, इतना बड़ा व्याख्याता इस समय हमारे यहाँ कोई ओर नहीं दीख पड़ता है।[16] प्रेमचन्द को अपनी परम्परा का गहरा और समृद्ध बोध था। अतः उन्होंने अपने युग के यथार्थ का उतना ही गहरा और समृद्ध चित्रण किया है। इस प्रकार प्रेमचन्द की प्रासंगिकता केवल अपने युग तक ही सीमित नहीं थी, वरन् आज भी प्रेमचन्द प्रासंगिकता लिए हुए है। "प्रेमचन्द ने समय-सत्य और रचना-सत्य को एक साथ रखकर लेखन किया है, इसीलिए वे राष्ट्रीय जीवन के परिप्रेक्ष्य में आज भी प्रासंगिक एवं सार्थक हैं।"[17] निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आज प्रेमचन्द का साहित्य हमारे लिए सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि सभी दृष्टिकोणों से प्रासंगिक ही नहीं चिरन्तन भी है।

संदर्भ सूची

1. राष्ट्रभाषा सन्देश, (मार्च 1981) राष्ट्री एकता के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्द की प्रासंगिकता–डॉ० भगवती प्रसाद शुक्ल-पृ० 7

2. हिन्दी उपन्यास और यथार्थवाद–डॉ० त्रिभुवन सिंह- पृ० 204

3. 'निर्मला'– प्रेमचन्द, पृ० 72

4. बीसवीं शताब्दी-हिन्दी उपन्यासः नए दो पहलू-डॉ० श्री नारायण– पृ० 59

5. प्रेमचन्द की उपन्यासकला-जनार्दन प्रसाद झा, पृ०16

6. गबन- प्रेमचन्द, पृ०35

7. प्रेमचन्द एक अध्ययन–राजेश्वर, पृ०203

8. बीसवीं शताब्दी हिन्दी उपन्यास-नए दो पहलू-डॉ० श्री नारायण सिंह, पृ०51

9. बीसवीं शताब्दी-हिन्दी उपन्यास: नए दो पहलू–डॉ० श्री नारायण सिंह पृ०51.

10. गोदान–प्रेमचन्द-पृ०203

11. देखिए 'गोदान' पृ० 183

12. प्रेमचन्द एक अध्ययन-राजेश्वर गुरु, पृ०254

13. गोदान गवेषणा-संपादक कपिलदेव सिंह, पृ०100

14. कर्मभूमि: प्रेमचन्द, पृ०5

15. बीसवीं शताब्दी-हिन्दी उपन्यास: नए दो पहलू–डॉ० नारायण सिंह पृ० 67.

16. प्रेमचन्द की उपन्यास कला-जर्नादन प्रसाद झा, पृ० 123

17. राष्ट्रभाषा सन्देश (मार्च 1981) राष्ट्रीय एकता के परिपेक्ष्य में प्रेमचन्द की प्रासंगिकता–डॉ० भगवती प्रसाद शुक्ल।

– रीडर

– हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्वविद्यालय

हिन्दी शोध और प्रेमचन्द

मोनिका तनेजा

"साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहलाना नहीं है। यह तो भाटों और मदारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है। साहित्यकार का पद इससे कहीं ऊँचा है। वह हमारा पथ-प्रदर्शक होता है। वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हममें सद्भावों का संचार करता है। हमारी दृष्टि को फैलाता है। कम से कम उसका यही उद्देश्य होना चाहिए।"

साहित्यकार के ऐसे दायित्व को स्वीकार करने वाली प्रेमचन्द ने हिन्दी साहित्य की सही अर्थों में जनता का साहित्य बनाकर जो कुछ भी साहित्य को दिया उससे स्पष्ट हो जाता है कि "वह सच्चे अर्थों में हमारे राष्ट्रीय ग्रन्थकार थे उनकी रचनाएं कश्मीर से कन्याकुमारी तक पढ़ी जाती है।" प्रेमचन्द जी ने अपना सम्पूर्ण जीवन (1880-1936) जिन संघर्षों में व्यतीत किया वे उनका ही नहीं अपितु उनके समय के सामान्यजन का था। यही कारण है कि उनके साहित्य मे उनका सम्पूर्ण युग मुखरित हो उठा है। वास्तव में उनका कथा साहित्य तत्कालीन संघर्षरत भारत की कहानी है। इसी कारण भारतीय कथा साहित्य के

इतिहास में 'प्रेमचन्द' की अपनी एक अलग ही पहचान है। उन्होंने न तो अतीत गौरव का पुराना राग गाया और न ही भावी की हैरत अंगेज़ कल्पना की। "उन्होंने तो बड़ी ईमानदारी के साथ अपने समय की समसामयिक अवस्था का विश्लेषण" जिस प्रकार से किया है, उससे स्पष्ट होता है कि उन्होंने "अपने क्षण को जीने का एहसास बड़ी सजगता से किया है।" सही रूप में उन्हें "कराहती मानवता का साहित्यकार कहा जा सकता है।"

प्रेमचन्द ने जिस रूप में उर्दू तथा हिन्दी के माध्यम से (अक्तूबर 1903 ई. से लेकर सन् 1936 ई. तक) जिस तरह भारतीय कथा-साहित्य में योगदान दिया वो वस्तुतः भारतीयता की अस्मिता को स्पष्ट करता है। कमल किशोर गोयनका जी की मान्यता है कि प्रेमचन्द के साहित्य में उनका चिन्तन, उनकी राष्ट्र सम्बन्धी अवधारणा जिस रूप में प्रस्तुत हुई है उससे स्पष्ट हो जाता है कि वे हमारे लिए इतने अधिक आधुनिक एवं निकट के लेखक है कि उन पर नये अध्ययन की सम्भावनाएं सबसे अधिक है। इसी बात को प्रकाश चन्द्र गुप्त जी ने भी स्वीकार किया है। उनके अनुसार "आज प्रेमचन्द की परम्परा को वहीं लेखक आगे बढ़ा रहे हैं, जो इस कठोर वर्ग-संघर्ष में शोषित वर्ग के साथ है और अध्यात्म, कला आदि की दुहाई देकर उसे भ्रम में डालने की कोशिश नहीं करते।"

प्रेमचन्द साहित्य के साथ-साथ समाज के भी सृष्टा रहे, क्योंकि उन्होंने जिस परम्परा को आगे बढ़ाने का कार्य नयी पीढ़ी को सौंपा है, उससे यह स्पष्ट होता है कि मानव-जीवन में उनकी जितनी गहरी पैठ थी, उतनी अन्यत्र कम ही मिलती है। अपनी इसी गहरी पैठ के कारण

प्रेमचन्द साहित्य भारतीय कथा-क्षेत्र में एक विराट् दीप-स्तम्भ की भांति है। जिस ओर उसका प्रकाश बिम्बित होता है, पाठक रूपी यात्री उस मार्ग की अच्छाईयों और बुराईयों से भली-भांति परिचित हो जाते हैं।

प्रेमचन्द ने भारतीय संस्कृति तथा भारतीय आदर्शों के प्रति जो श्रद्धा और प्रेम दिखाया है, वह उनके साहित्य को जनता का साहित्य बना देता है। बाबू राव विष्णु पराड़कर की मान्यता है कि "प्रेमचन्द के साहित्य में जीवन का जन-वर्ग प्रतिबिम्बित होता है, उनके पात्र जनवर्ग के हैं और विचार वर्गों को उठाने और मिलाने के भगीरथ प्रयत्न के द्योतक है। स्वयं प्रेमचन्द जनता के प्रतीक हैं।"

प्रेमचन्द से आने वाली पीढ़ियों को भी बहुत कुछ ग्रहण करना है। उन्हें भारतीय साहित्य के अध्येताओं ने अपने अध्ययन का विषय बनाया है।

साहित्यिक अध्ययन सदृश्य / पाठक की नैसर्गिक जिज्ञासा को तृप्त करने का माध्यम होता है। वस्तुतः यह नैसर्गिक जिज्ञासा ही मानवीय-चिन्तन को शोध-क्षेत्र की ओर प्रवृत्त करती है। शोध यदि किसी उपाधि के निमित्त होता है, तो सोपाधि होता है और यदि विश्वविद्यालय नियमों से मुक्त होता है तो निरूपाधि होता है।

शोध की मूल जिज्ञासा मानव के संपर्क क्षेत्र के किसी भी क्षेत्र में हो सकती है, क्योंकि शोधार्थी ज्ञान-मार्ग का पथिक होता है। ऐसे ज्ञान-मार्ग का पथिक जिस पर चल कर वह सत्य की साधना करते हुए उपयोगी भावों को साकार करने में सक्षम हो। इस रूप में प्रेमचन्द के कृतित्व पर प्रभूत विचार हुआ है।

मुंशी प्रेमचन्द वैचारिक दृष्टि से 1903 से लेकर 1936 तक निरन्तर विकसित होते हुये साहित्यकार रहे हैं। उनके कथा-साहित्य में परिस्थितियों और स्थितियों का जो चित्रण हुआ है, वह अपने युग को इस प्रकार से समीचीन बनाता है कि उनके साहित्यिक कृत्तत्व समय को हिन्दी कथा-साहित्य में प्रेमचन्द युग कहा गया। उन्होंने उत्तर भारत की गंगा-यमुनी लोकधारा को हिन्दी तथा उर्दू दो भाषाओं की समस्याओं के रूप में समझते हुए जो साहित्यिक घोषणा-पत्र दिये, उन पर कोई भी समाज गर्व कर सकता है। हिन्दी तथा उर्दू में चौदह पूर्ण तथा एक अपूर्ण उपन्यास तथा तीन सौ से अधिक कहानियां उनकी मृत्यु के बारह वर्ष बाद से लेकर आज तक विभिन्न दृष्टियों से हिन्दी सोपाधि शोध का विषय बनती रही। उनके जीवन-दर्शन और व्याख्या, शिल्प और भाषा, युगबोध, उनके ग्रामीण चित्रण, राष्ट्रीय भाव और समस्याओं के साथ-साथ उनके समसामायिक तथा परवर्ती साहित्यकारों को लेकर तुलना करते हुए अध्ययन हुए हैं। इस संदर्भ में हिन्दी शोध संदर्भ भाग 1, 2, 3, 4 तथा यूनिवर्सिटी न्यूज़ तथा अन्य उपलब्ध हिन्दी शोध सूचियों में संकलित सूचनाओं के आधार पर यह तथ्य प्राप्त होता है कि अब तक प्रेमचन्द जी पर लगभग साढ़े तीन सौ शोध कार्य हो चुके हैं। इनमें से लगभग दस तो साहित्यिक क्षेत्र की सर्वोच्च उपाधि डी. लिट. के लिए हैं और शेष पी०एच०डी० के लिए हैं।

भारत के 65 विश्वविद्यालयों में प्रेमचन्द सम्बन्धी शोध-कार्य हुए हैं, जिनमें काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय तथा राजस्थान विश्वविद्यालय में बीस या उससे अधिक कार्य हुए हैं। इसी प्रकार प्राप्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट होता है

कि प्रेमचन्द जी पर सर्वप्रथम सन् 1952 ई. में आगरा विश्वविद्यालय से शोध उपाधि प्रदान की गयी। उसके पश्चात् कुछ वर्षों के अन्तराल के बाद नागपुर विश्वविद्यालय से 1957 में उपाधि प्रदान की गयी और तब से आद्यतन विभिन्न भारतीय विश्वविद्यालयों से आप पर निरन्तर शोध कार्य हो रहा है।

प्रेमचन्द जी के उपन्यासों सम्बन्धी लगभग 160 शोध कार्य हुए हैं। उनके समग्र कथा-साहित्य को लेकर 86 कार्य, कहानियों को लेकर 44 कार्य कथात्तेर साहित्य पर 20 कार्य कथा-साहित्य में पात्रों को लेकर 17 कार्य पत्रकारिता पर 4 कार्य जीवनी पर 3 कार्य और नाटक पर एक कार्य हुआ है। पचास के लगभग कार्य प्रेमचन्द के साथ तुलना लेकर हुए हैं। उनकी तुलना नागार्जुन, फणीश्वर नाथ रेणु, जयशंकर प्रसाद, अमृतलाल नागर आदि के साथ तो हुई ही है। इसके अतिरिक्त पंजाबी के नानक सिंह, बंगला के शरत, रविन्द्रनाथ टैगोर, ताराशंकर बन्द्योपाध्याय, उड़िया के फकीर-मोहन के साथ भी आपके कथा-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। विदेशी कथाकारों में टॉलस्टाय, गोर्की, मम-सांग, बॉल जोक आदि के साथ भी आपके तुलनात्मक अध्ययन किये गये। प्रेमचन्द के साथ पन्नालाल पटेल, गोपीचन्द, मुलकराज आनन्द, थका जी, हरिनारायण आप्टे, पद्म पिल्ले, केशव देव की तुलना भी हुई है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द और उनका साहित्य अभी भी शोधार्थियों के लिए बहुत कुछ अपने भीतर संजोये हुए हैं। अमृतलाल नागर ने सच ही कहा है कि– "प्रेमचन्द हमारी वह निधि है, जिनसे हमारी कम से कम दो पीढ़ियां अभी और समृद्ध बन सकती है।"

सच है कि प्रेमचन्द सच्चे अर्थों में ऐसे भारतीय कथाकार है, जिनको कश्मीर से कन्याकुमारी तक कहीं अपना परिचय-पत्र दिखाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनको सभी स्वत: पहचानते हैं। आज भी प्रेमचन्द का सही स्थान निर्धारित करना और उनके साहित्य को पूरी तरह समझ लेना संभव नहीं हो पाया क्योंकि वो तो 'एक ऐसे टीले थे, जिसके दोनों ओर ढलान है। उनके विषय में कहा गया है– वे तो "हमारे इस युग के वेद-व्यास थे। सेवा-सदन से गोदान तक पढ़ जाना हमारे इस युग के इतिहास को पढ़ जाना है। .....वैसा इतिहास जो तारीखों और व्यक्तियों पर निर्भर न करके उस अन्तर्धारा का सजीव चित्रण करता है, जो समाज की रीढ़ है।" रामवृक्ष बेनीपुरी

ऐसे उस समर्थ कथाकार पर हुए हिन्दी में शोध कार्य की क्रमबद्ध सूची, वर्षानुसार शोध कार्यों की गणना तथा विश्वविद्यालयों के अनुसार शोध कार्यों की गणना का यह संदर्भ प्रेमचन्द जी की आज का प्रासंगिकता के नाम अर्पित है।

प्रेमचन्द-साहित्य सम्बन्धी शोध-कार्य

1.	शंकर लाल शुक्ल	उपन्यासकार प्रेमचन्द उनकी कला सामाजिक विचार और जीवन दर्शन	आगरा 1952
2.	महेन्द्र भटनागर	प्रेमचन्द के समस्यामूलक उपन्यास	नागपुर 1957
3.	राजेश्वर प्रसार गुरु	प्रेमचन्द की कृतियों का अध्ययन	नागपुर 1958
4.	सुषमा धवन	प्रेमचन्द तथा प्रेमचन्दोत्तर उपन्यास की आवृत्तियां: तुलनात्मक अध्ययन	पंजाब 1959
5.	गंगा प्रसाद पाठक	प्रेमचन्द और रमणलाल वसंतलाल देसाई के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन	आगरा 1960
6.	गीता लाल	प्रेमचन्द का नारी चित्रण और उसे प्रभावित करने वाले स्रोत	पटना 1961
7.	एस. रामचन्द्रन	प्रेमचन्द और शिवराम कारत: एक तुलनात्मक अध्ययन	कर्नाटक 1962
8.	शीला गुप्ता	प्रेमचन्द के उपन्यासों और लघु कहानियों का समीक्षात्मक अध्ययन	इलाहाबाद

9. सुरेन्द्रनाथ तिवारी	प्रेमचन्द और शरत् चन्द्र के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन	लखनऊ
10. जगदीशचन्द्र शर्मा 'इन्दु'	प्रेमचन्द और प्रसाद के कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन	आगरा 1963
11. प्रभा शर्मा	प्रेमचन्द तथा उनके समवर्ती कथा-साहित्य में लोक-संस्कृति	लखनऊ
12. इन्द्र मोहन कुमार सिन्हा	प्रेमचन्द की कहानियों के आधार पर तदयुगीन सामाजिक जीवन का अध्ययन	पटना 1966
13. रक्षा भल्ला	प्रेमचन्द की कहानियों में व्यक्ति और समाज	इलाहाबाद
14. शोभना खटावकर	खंडेकर और प्रेमचन्द के नारी पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन	पूना
15. सत्येन्द्र जी वर्मा	प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में सामाजिक समस्याएं	इलाहाबाद
16. सरोज प्रसाद	प्रेमचन्द के उपन्यासों में समसामायिक परिस्थितियों का प्रतिफलन	बिहार
17. कृष्ण चन्द्र पाण्डेय	प्रेमचन्द के व्यक्तित्व और जीवन दर्शन के विधायक तत्व	इलाहाबाद 1967
18. प्रमिला गुप्ता	प्रेमचन्द और हरि नारायण आप्टे के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन	दिल्ली
19. महाराज कृष्ण जैन	प्रेमचन्द और प्रेमचन्दोत्तर हिन्दी उपन्यास में नारी की परिकल्पना का विकास	पंजाब

20. राम बाबू सारस्वत	कहानीकार प्रेमचन्द तथा पन्नालाल पटेल का तुलनात्मक अध्ययन	आगरा विद्यापीठ
21. शशीभूषण सिंहल (डी.लिट्)	हिन्दी उपन्यास की विभिन्न प्रवृत्तियों का विकास: प्रेमचन्द से 1960 तक	लखनऊ
22. श्यामसुन्दर घोष	प्रेमचन्द के उपन्यासों में मध्यवर्ग	भागलपुर
23. शैल अग्रवाल	प्रेमचन्द साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन की समस्याएं	इलाहाबाद 1968
24. सुरेश कुमार	शैली-विज्ञान की दृष्टि से प्रेमचन्द की भाषा का अध्ययन	आगरा
25. नर्मदा प्रसाद मिश्र	प्रेमचन्द की भाषा का आलोचनात्मक अध्ययन	इलाहाबाद 1969
26. प्रतिभा तिवारी	प्रेमचन्द साहित्य में लोक-तत्व	इलाहाबोद
27. बच्चन पाठक	प्रेमचन्द के उपन्यासों में मानवीय सम्बन्ध	पटना
28. यज्ञदत्त शर्मा	प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में शहरी जीवन	इलाहाबाद
29. शिवधर रामकिशोर 'शुक्ल'	हिन्दी उपन्यासकारों का जीवन-दर्शन प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, अज्ञेय और यशपाल के संदर्भ में	बम्बई
30. गिरवरधारी सिंह	आदर्शवाद और यथार्थवाद: स्वरूप विश्लेषण (प्रेमचन्द के विशेष संदर्भ में)	पटना 1970
31. दूधनाथ सिंह	प्रेमचन्द साहित्य में प्रतिक्रियावादी तत्व	इलाहाबाद

32. नरेन्द्रकुमार आर्य	प्रेमचन्द और नानक सिंह के कहानी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन	पंजाब
33. निर्मल चावला	प्रेमचन्द और नानक सिंह के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन	लखनऊ
34. पुरुषोत्तम दास वर्मा	प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में भारतीय तथा पश्चिमी मूल्यों का सांस्कृतिक संघर्ष	इलाहाबाद
35. पृथा रानी डे	प्रेमचन्द तथा रतन चन्द्र के कथा-साहित्य में नारी पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन	पंजाब
36. प्रकाश लाल दास	प्रेमचन्द के उपन्यासों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि	बिहार
37. वी. श्रीनिवासाचार्य	प्रेमचन्द और तेलुगु के सामाजिक उपन्यास: तुलनात्मक अध्ययन	उस्मानिया
38. शकुन्तला यादव	प्रेमचन्द के उपन्यासों में परिवार-व्यवस्था	आगरा
39. संतोष जारू	प्रेमचन्द और प्रसाद के नारी-पात्र	कश्मीर
40. सुधा रानी गोयल	प्रेमचन्द के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अनुशीलन	मेरठ
41. इमा गुप्ता	प्रेमचन्द साहित्य में भारतीय ग्राम और उनकी समस्यायें	इलाहाबाद 1971
42. उषा कुमारी	प्रेमचन्द और मुल्कराज आनन्द	आगरा
43. कृष्ण सिंह वर्मा	के साहित्य में परिव्याप्त मानवता-वादी दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन	विद्यापीठ

44. तिलकराज वढेरा	प्रेमचन्द और नानकसिंह के उपन्यास	दिल्ली
45. निर्मल शर्मा	प्रेमचन्द साहित्य का समाज-शास्त्रीय अध्ययन	इलाहाबाद
46. भरत सिंह	प्रेमचन्द के नारी-पात्र	आगरा
47. सतीश कुमार दुबे	समाजशास्त्रीय सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्द साहित्य का मूल्यांकन	इंदौर
48. सरोजनी देवी	गोदान एवं गण देवता के संदर्भ में मुंशी प्रेमचन्द और ताराशंकर वन्धोपाध्याय की उपन्यास-कला का तुलनात्मक अध्ययन	मेरठ
49. उषा खत्री	प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में अन्तर्द्वन्द	आगरा 1972
50. कमलकिशोर गोयनका	प्रेमचन्द के उपन्यासों का शिल्प-विधान	विश्वभारती
51. नारायण पाण्डेय	प्रेमचन्द के उपन्यासों में चित्रित किसान-समस्या	विश्वभारती
52. राधाकिशन	प्रेमचन्द की कहानियों का शैली-तात्विक अध्ययन	राजस्थान
53. रामसिंह	प्रेमचन्द की परिवार-निष्ठा और उसका उनकी रचना-प्रक्रिया पर प्रभाव	इलाहाबाद
54. इंदुमती सिंह	प्रेमचन्द के उपन्यासों में जीवन और कला	काशी 1972
55. उदयनारायण दुबे	प्रेमचन्द और यशपाल के कथा-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन	इलाहाबाद
56. उमाकांत चौधरी	प्रेमचन्द के उपन्यासों में परिवेश	मिथिला

57. एस. खेण्ण	प्रेमचन्द और अन.न. कृष्णराव के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन	बैंगलूर
58. कांतिदेवी वर्मा	गद्यकार प्रसाद तथा प्रेमचन्द: एक तुलनात्मक विवेचन	मेरठ
59. बीना गोयल	प्रेमचन्द साहित्य में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति	इलाहाबाद
60. मोहनलाल प्रभाकर	प्रेमचन्द युग के हिन्दी उपन्यास	दिल्ली
61. रचना सिंह	हिन्दी कहानी और प्रेमचन्द	विक्रम
62. वेदप्रकाश वशिष्ठ	प्रेमचन्द साहित्य में कारकीय प्रयोग	मेरठ
63. श्यामलाल यादव	प्रेमचन्द के उपन्यासों में सामाजिक अन्तर्विरोध और वर्ग चेतना	जबलपुर
64. हरीशंकर नेमा	प्रेमचन्द साहित्य में शैक्षणिक भूमिकाओं का अनुशीलन	सागर
65. कमल नाथ	प्रेमचन्द और ताराशंकर की उपन्यास-कला का तुलनात्मक अध्ययन	विक्रम 1974
66. कमलादेवी गुप्ता	प्रेमचन्द और शरत के नारी पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन	कानपुर
67. कुसना चत्रे	प्रेमचन्द के उपन्यासों में शिशु मनोविज्ञान	इलाहाबाद
68. नन्दलाल अहिरवार	प्रेमचन्द के औपन्यासिक पात्रों का समाजशास्त्रीय अध्ययन	सागर
69. मंजु भटनागर	प्रेमचन्द साहित्य में सूक्तियां एक विवेचनात्मक अध्ययन	राजस्थान

70.	प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में ग्राम्य जीवन	काशी 1975
71. मोनिका चटर्जी	प्रेमचन्द और शरत चन्द्र के उपन्यासों में अभिव्यक्त समाज एवं जीवन-दर्शन	लखनऊ
72. रमा मेहरोत्रा	प्रेमचन्द और प्रसाद के कथा साहित्य में नारी	लखनऊ
73. रोचना सुमन	हिन्दी कहानी और प्रेमचन्द	विक्रम
74. श्रीकांत पाण्डेय	प्रेमचन्द के उपन्यासों में युग-जीवन	सागर
75. सुशील कुमार भाटिया	हिन्दी और पंजाबी उपन्यास साहित्य: प्रेमचन्द और नानकसिंह के विशेष संदर्भ में	मगध
76. पृथा रानी डे	प्रेमचन्द और शरत चन्द्र के कथा साहित्य के नारी-पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन	पंजाब 1976
77. ब्रजवासी लाल शर्मा	प्रेमचन्द के उपन्यासों में जीवन-दर्शन	आगरा
78. मंजु रानी जैसवाल	प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में सामाजिक जीवन	काशी
79. शशी भल्ला	प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र के उपन्यासों के नारी पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन	भोपाल
80. श्रीकृष्ण पाण्डेय	प्रेमचन्द का समाज दर्शन	रांची
81. सुभद्रा एन. पाटेल	प्रेमचन्द के उपन्यासों में सामाजिक समस्यायें	दक्षिण गुजरात

82. जे. हेमवती रम्भा	प्रेमचन्द के उपन्यासों में मध्यवर्ग का चित्रण	सागर 1977
83. राधा अग्रवाल	प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में धर्म-निरपेक्षता की भावना	दिल्ली
84. श्यामशरण शर्मा	प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक चेतना	विक्रम
85. उमाशशि चोपड़ा	उपन्यासकार प्रेमचन्द और नानक सिंह के उपन्यासों में चित्रित समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन	पंजाब 1978
86. जाकर रजा	प्रेमचन्द के हिन्दी कथा-साहित्य और उनके उर्दू कथा-साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन	इलाहाबाद
87. जिउत तिवारी	कथाकार प्रेमचन्द की भाषा (भाषावैज्ञानिक विश्लेषण)	मगध
88. मुहम्मद अब्दुल करीम	प्रेमचन्द और थका जी के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन	केरल
89. शुभांगी देवी	प्रेमचन्द की कहानी-शिल्प और हिन्दी कहानी	रांची
90. शैलेश जैदी	प्रेमचन्द के उपन्यास-पात्र: नवमूल्यांकन	अलीगढ़
91. एन.एस. रामा-सुब्रमण्यम्	प्रेमचन्द की कहानियां: एक आलोचनात्मक अध्ययन	मैसूर 1979
92. कांतिदेवी	गद्यकार प्रसाद तथा प्रेमचन्द: एक तुलनात्मक विवेचन	मेरठ

93.	गौतम देव सचदेव	प्रेमचन्द की कहानियों की शिल्प-विधि	दिल्ली
94.	टी. वेंकटाचलम्	प्रेमचन्द और रवीन्द्रनाथ टैगोर की कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन	आंध्र
95.	नंदलाल यादव	प्रेमचन्द साहित्य की मानवतावादी प्रवृत्तियों का अनुशीलन	बम्बई
96.	माधुरी सिन्हा	प्रेमचन्द के उपन्यासों के प्रेरणा-स्रोत	रीवा
97.	तारा भाटी	प्रेमचन्द के साहित्य में युग-बोध	जोधपुर 1980
98.	दीप्तिरानी जैसवाल	उपन्यासकार प्रेमचन्द और ताराशंकर बन्द्योपाध्याय	काशी
99.	मुहम्मद हातिम	प्रेमचन्द की कहानियों में वर्णित जीवन का अध्ययन	आन्ध्र
100.	रत्नाकर पांडेय (डी. लिट्)	पत्रकार प्रेमचन्द और हंस	रांची
101.	राजकुमारी गुगलानी	प्रेमचन्द के उपन्यासों का समाजशास्त्रीय अध्ययन	महर्षि दयानन्द रोहतक
102.	रामबख्श जाट	प्रेमचन्द और भारतीय किसान	जे.एन.यू.
103.	संतोष लूथरा	प्रेमचन्द ओर प्रसाद के साहित्य की मूलवर्ती चेतना	दिल्ली
104.	इंदिरा दुबे	प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में युगबोध	नागपुर 1981
105.	एस. रेबन्ना	प्रेमचन्द और ए.एन. कृष्णराव का व्यक्तित्व और कृतित्व: एक तुलनात्मक अध्ययन	बंगलौर

106.	कमल रंजन	प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में साम्प्रदायिक एकता	मगध
107.	कांतिमोहन शर्मा	प्रेमचन्द और अछूत समस्या	दिल्ली
108.	चन्द्रप्रकाश	प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में नीति-तत्व	लखनऊ
109.	जसवंत और परमार	प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में जीवन की व्याख्या	पूना
110.	शिव कुमार यादव (डी.लिट्)	प्रेमचन्द के उपन्यासों में युग चेतना का अनुशीलन	भागलपुर
111.	उषा कुमारी	प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य का मूल्यांकन	पंजाब 1982
112.	एम. विमला	प्रेमचन्द के उपन्यासों में व्यक्त समस्यायें	बंगलौर
113.	जगदीश मणि त्रिपाठी	ग्रामीण अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्द का साहित्य	बिहार
114.	निर्मला छाबड़ा	प्रेमचन्द की कहानियों की सामाजिक चेतना	कलकत्ता
115.	रमोला ई. हेनरी	प्रेमचन्द साहित्य में भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति	सागर
116.	आर.डी. मेहतो	हिन्दू-मुस्लिम संबंध और प्रेमचन्द के उपन्यासों में उसकी अभिव्यक्ति	बिहार 1983
117.	उमेश चौरसिया	प्रेमचन्द के उपन्यासों में गांधी विचारधारा का अन्वेषण	भागलपुर
118.	गिरीशचन्द्र बख्शी	मुंशी प्रेमचन्द और ताराशंकर बन्द्योपाध्याय के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन	दिल्ली

119.	जींवती उपाध्याय	प्रेमचन्द के उपन्यासों में चरित्र-चित्रिण के विविध आयाम	कुमायूं
120.	धर्मध्वज त्रिपाठी (डी.लिट्)	प्रेमचन्द की कथा साहित्यपरक समीक्षा का अनुशीलन	कानपुर
121.	माता प्रसाद सिंह	प्रेमचन्द: कथा साहित्य की भूमिका	कलकत्ता
122.	सरोजनी सिन्हा	प्रेमचन्द के उपन्याास साहित्य में निम्न वर्ग	मगध
123.	सुरेन्द्र सिन्हा	प्रेमचन्द साहित्य पर आर्य समाज का प्रभाव	गुरुकुल कांगड़ी
124.	ओमपाल	प्रेमचन्द कालीन उपन्यासों पर आर्य समाज का प्रभाव	पंजाब 1984
125.	कमल किशोर गोयनका (डी.लिट्)	प्रेमचन्द का जीवन	रांची
126.	चंद्रकांत रणवीर	प्रेमचन्द तथा साने गुरुजी के साहित्य में निरूपित सामाजिक संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन	सरदार पटेल
127.	चरणजीत लाल कालरा	प्रेमचन्द के उपन्यास और वर्ग संघर्ष	दिल्ली
128.	नागेन्द्र प्रताप सिंह	प्रेमचन्द और यथार्थवाद	जे.एन.यू.
129.	प्रभावती गान्धी	प्रेमचन्द के पुरुष पात्रों का समाजशास्त्रीय अनुशीलन	विक्रम
130.	वीरभरत तलवार	प्रेमाश्रम और अवध का किसान आन्दोलन	जे.एन.यू.
131.	सुधाकर सिंह	प्रेमचन्द के कथा साहित्य में मध्यवर्ग	काशी
132.	सुरेन्द्रप्रताप सिंह	साम्प्रदायिकता और प्रेमचन्द के उपन्यास	काशी

133.	अरूण कुमार मिश्र	जातीय संदर्भ और प्रेमचन्द	जोधपुर 1985
134.	अहमद हुसैन	'बाजार-ए-हुस्न', गोशा ए जाकि़दात और गोदान के विशेष संदर्भ में प्रेमचन्द के शैलीगत विकास का संरचनात्मक विश्लेषण	जे.एन.यू.
135.	जी.के. कारेलकर	प्रेमचन्द और खंडेरकर द्वारा लिखित कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन	बम्बई
136.	देवेन्द्रनाथ ठाकुर	प्रेमचन्द और रमणलाल देसाई के उपन्यासों में सामाजिक चेतना	हैदराबाद
137.	नीलमणि दुबे	प्रेमचन्द की कहानियों में ग्रामीण जीवन	रीवा
138.	बनमाली दास	'गोदान' और 'छमन्ना अठगुंठा' के विशेष संदर्भ में प्रेमचन्द और फकीर मोहन	उत्कल
139.	राजबिहारी मिश्र	प्रेमचन्द के उपन्यासों का सामाजिक यथार्थ	काशी
140.	वीराभाई शंकर-भाई पटेल	प्रेमचन्द के कथा साहित्य में ग्राम चित्रण	गुजरात
141.	उषा सिंह	प्रेमचन्द के उपन्यास और भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन	मगध 1986
142.	कुमकुम कटियार	प्रेमचन्द और रेणु के उपन्यासों में ग्राम चित्रण का तुलनात्मक अध्ययन	बिहार
143.	कैलाश कौशल	प्रेमचन्द एवं प्रसाद के कहानी साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन	जोधपुर
144.	गोविन्द नारायण	प्रेमचन्द के उपन्यासों में प्रगतिशीलता	लखनऊ

145.	देशराज	प्रेमचन्द साहित्य में पात्र नामों तथा स्थान नामों का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन	मेरठ
146.	नरेन्द्र प्रकाश राय	प्रेमचन्द की भाषा का सामाजिक संदर्भ	गोरखपुर
147.	पवन गंगल	प्रेमचन्द साहित्य में शिक्षा का योगदान	कानपुर
148.	बलराम प्रसाद	प्रेमचन्द साहित्य और राष्ट्रीय चेतना	काशी
149.	वाल्मीकि प्रसाद गौतम	प्रेमचन्द के उपन्यासों में चित्रित यथार्थ	रीवा
150.	सरदार सुरेन्द्र सिंह	प्रेमचन्द की पत्रकारिता	मगध
151.	स्नेह प्रभा	स्वाधीनता आन्दोलन और उपन्यासकार प्रेमचन्द	काशी
152.	कल्पना धपलियाल	प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य का भारतीय काव्यशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन	गढ़वाल 1987
153.	डी. ढोलाला	प्रेमचन्द और शोषित वर्ग: के संदर्भ में	गुलबर्गा
154.	पी.आर. कोटक	प्रेमचन्द के उपन्यासों में नायक की परिकल्पना	सौराष्ट्र
155.	बलवंत साधु यादव	प्रेमचन्द के उपन्यासों में दलित पात्र	शिवाजी
156.	मधुबाला यादव	आधुनिक युग में प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य की प्रासंगिकता	राजस्थान
157.	राम सिंहासन सिंह	प्रेमचन्द के कथा साहित्य में मानवीय संवेदनाएं	मगध

158.	शारदा वर्मा	प्रेमचन्द के उपन्यासों में प्रासंगिक कथाओं की भूमिका	दिल्ली
159.	हरबंस लाल वासदेव	युगबोध के संदर्भ में टाल्सटाय और प्रेमचन्द का उपन्यास साहित्य	पंजाब
160.	आशा अग्रवाल	प्रेमचन्द की जीवनियों के संदर्भ	मेरठ 1988
161.	उपेन्द्रप्रसाद राय	'गोदान' की संरचना और संकल्प का मूल्यांकन	रांची
162.	ओमप्रकाश सिंह	प्रेमचन्द के कथा साहित्य में हिन्दू-मुस्लिम संवंध	काशी
163.	कुसुम दुबे	प्रेमचन्द के उपन्यासों में ग्राम संस्कृति	गोरखपुर
164.	के. राममूर्ति	प्रेमचन्द के साहित्य का मनो-वैज्ञानिक अध्ययन	आंध्र
165.	जीवत राम मूलचंद चंदवानी	प्रेमचन्द की कहानियों में सम-सामयिक परिस्थितियों का प्रतिफलन	नागपुर
166.	दिनेश कुमार	प्रेमचन्द के उपन्यासों में ग्रामीण पात्रों की भाषा एक शैली वैज्ञानिक विश्लेषण	राजस्थान
167.	देवेन्द्र पाण्डेय	प्रेमचन्द तथा फणीश्वरनाथ रेणु में चित्रित ग्राम्य जीवन	रांची
168.	नविरत लाल गार्गी	प्रेमचन्द तथा नानक सिंह के उपन्यासों में नारी जीवन का चित्रण: एक तुलनात्मक विश्लेषण	पंजाब
169.	मीनाक्षी शर्मा	प्रेमचन्द के उपन्यासों में वर्गवादी चेतना	राजस्थान

170.	मीनाक्षी श्रीवास्तव	कथानक वक्रता और प्रेमचन्द के उपन्यास	राजस्थान
171.	सुभाष चन्द्र	प्रेमचन्द की कहानियों का शैली वैज्ञानिक अध्ययन	दिल्ली
172.	अनीता रानी	प्रेमचन्द की कहानियों में परम्परा और आधुनिकता	दिल्ली 1989
173.	अरुण कुमार मित्तल	प्रेमचन्द और उनके परवर्ती उपन्यासकारों द्वारा चित्रित ग्रामीण जीवन का तुलनात्मक अध्ययन	सागर
174.	मुन्नुरु वीरा सत्यनारायण वेंकट	प्रेमचन्द के साहित्य में सुधारवादी दृष्टिकोण का अध्ययन	आन्ध्र
175.	चन्द्रकांता गर्ग	प्रेमचन्द धारा (स्कूल) के उपन्यासों में नारी चित्रण	जोधपुर
176.	पेनम्मा जैकब	प्रेमचन्द के उपन्यासों में अभिव्यंजित भारतीय जन जीवन	केरल
177.	प्रवीर कुमार मुखोपाध्याय	प्रेमचन्द के उपन्यासों और उनकी कहानियों का रचनात्मक संदर्भ	कलकत्ता
178.	बादशाह हुसैन खां	प्रेमचन्द के उपन्यासों में जनवादी चेतना	अवध
179.	रचना ठाकुर	प्रेमचन्द का उपन्यास साहित्य: नारी चित्रांकन के विविध आयाम, प्रक्रिया और स्वरूप	राजस्थान
180.	रमा घोष	सामाजिक चेतना के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन	पटना
181.	राम कुमार मित्तल	प्रेमचन्द के उपन्यासों में चित्रित पारिवारिक सम्बन्धों का अध्ययन	रविशंकर

182.	रेणु सिन्हा	प्रेमचन्द की कहानियों में मध्यम वर्ग	रांची
183.	विनय जैन	प्रेमचन्द के उपन्यासों में परम्परा और आधुनिकता	दिल्ली
184.	अर्चना गोयल	प्रेमचन्द साहित्य के आलोचकों का अध्ययन	रूहेलखंड 1990
185.	आशा जुगरान	प्रेमचन्द और टॉलस्टाय के साहित्य का विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन	गढ़वाल
186.	आशा वर्मा	प्रेमचन्द का कथेतर साहित्य: एक आलोचनात्मक अध्ययन	रूहेलखंड
187.	उमा त्रिपाठी	प्रेमचन्द की कहानियों में यथा स्थितिवाद तथा प्रगतिशीलता के द्वन्द्व	रीवा
188.	एस. सत्यनारायण	प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में गरीबी की समस्यायें	उस्मानिया
189.	एस.जी. वीरुपन्न	प्रेमचन्द और मुल्कराज आनंद की कृत्तियां में सामाजिक यथार्थता एक तुलनात्मक अध्ययन	बंगलौर
190.	चन्द्रवीर सिंह	प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में लोक मनोविज्ञान	मेरठ
191.	जवाहर चौधरी	साहित्य एवं समाजशास्त्र में सामाजिक व्यवस्था एवं संरचना का प्रवर्त्तन: प्रेमचन्द के उपन्यासों के विशेष संदर्भ में	जीवा जी

192.	जे. निर्मला	उपन्यासों और कहानियों के लेखक के रूप में प्रेमचन्द और नागार्जुन का तुलनात्मक अध्ययन	केरल
193.	रंजना झा	प्रेमचन्द के उत्तरवर्ती साहित्य में प्रगतिशीलता के तत्व	मिथिला
194.	वीणा केवल कृष्ण बन्धु	प्रेमचन्द के कथा साहित्य में चित्रित दलित वर्ग का जीवन और उनकी समस्याओं का अनुशीलन	सरदार पटेल
195.	श्रवण कुमार मीणा	प्रेमचन्द का कहानी साहित्य: चरित्र चित्रण के विविध आयाम, प्रक्रिया एवं स्वरूप	राजस्थान
196.	संतोष कुमार सिंह	हिन्दी पत्रकारिता का विकास और पत्रकार प्रेमचन्द	काशी
197.	समरबहादुर सिंह	प्रेमचन्द और राष्ट्रीय आन्दोलन (इतिहास विभाग से)	काशी
198.	सरोजनी बाला	प्रेमचन्द और भारतीय राष्ट्रीयता (इतिहास विभाग से)	कुरूक्षेत्र
199.	सुनंदा वामन बाघ	प्रेमचन्द जी तथा खंडेरकर जी की कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन	पूना
200.	अरविंद कुमार शर्मा	प्रेमचन्द और शरत् चन्द्र के उपन्यासों में चित्रित समाज	काशी 1991
201.	आर. रामचन्द्रन पिल्लई	प्रेमचन्द और करूर की कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन	केरल
202.	ओम प्रकाश शाह	प्रेमचन्द के उपन्यासों में समाजवादी विचारधारा	भागलपुर
203.	किरण सिंह	गोदान एवं मैला आंचल में किसान का सामाजिक जीवन	काशी

204.	कुमार आशुतोष	प्रेमचन्द के उपन्यास में प्रगतिशील लेखन-तत्व	मिथिला
205.	जगदीश लाल डाबर	रचनात्मक कल्पना में समाज राजनीतिक यथार्थ: प्रेमचन्द के कृतित्व का अध्ययन	जे.एन.यू.
206.	डी. कुशचन्दर राव	जातीय संदर्भ और प्रेमचन्द तथा उनकी परम्परा के उपन्यास	विक्रम
207.	प्रगतिजाओल कर	प्रेमचन्द के गोदान का समाज-भाषिक अनुशीलन	भोपाल
208.	शशी प्रभा	प्रेमचन्द के उपन्यासों में उदात्त तत्व	मेरठ
209.	शिववचन सिंह यादव	प्रेमचन्द की कहानियों का वर्ग चरित्र और उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि	काशी
210.	सरोज चौरसिया	प्रेमचन्द : नारी पात्र और उनका विश्लेषण	रूहेलखंड
211.	सविता गौतम	प्रेमचन्द का शब्द भंडार: भाषा वैज्ञानिक अध्ययन	दिल्ली
212.	सुषमा शर्मा	प्रेमचन्द के उपन्यासों में नारी चरित्रांकन के विविध रूप	राजस्थान
213.	उर्मिला रानी	प्रेमचन्द: गांधीवादी विचारधारा का प्रभाव	राजस्थान 1992
214.	कंचन सक्सेना	उपन्यासकार प्रेमचन्द के मानव मूल्य	राजस्थान
215.	डी.एस. ठाकुर	प्रेमचन्द और अमृतलाल नागर के उपन्यासों में प्रतिफलित सामाजिक चेतना का विशिष्ट अनुशीलन	घासीदास
216.	निधि जायसवाल	प्रेमचन्द: विचारधारा और साहित्य	गोरखपुर
217.	ममता तिवारी	प्रेमचन्द के कथा साहित्येत्तर साहित्य का अध्ययन	कानपुर

218.	रेखा रानी	प्रेमचन्द की कहानिया: अन्तर्वस्तु और संरचना	गोरखपुर
219.	वंदना	स्वाधीनता संघर्ष और प्रेमचन्द के उपन्यास	गोरखपुर
220.	विमला दास	प्रेमचन्द के उपन्यासों में जनवादी चेतना का विवेचनात्मक अध्ययन	रविशंकर
221.	शकुन्तला प्रसाद	प्रेमचन्द के उपन्यासों में आदर्श एवं यथार्थवादी विचारधारा का अनुशीलन	भागलपुर
222.	शोभा नाथ	प्रेमचन्द के उपन्यासों में जमींदार का स्वरूप	काशी
223.	अरुण कुमार दौधरे	प्रेमचन्द के उपन्यासों में चित्रित नगर और नगरीय जीवन	सागर 1993
224.	उनगू ली	प्रेमचन्द एवं ममसांग सब (दक्षिण कोरियाई) के उपन्यासों की यथार्थ चेतना: तुलनात्मक अध्ययन	आगरा
225.	किशोर चन्द्र	प्रेमचन्द के उपन्यासों की भाषा-शैली	कुमाऊँ
226.	गीता देवी	आधुनिक सामाजिक पृष्ठभूमि में प्रेमचन्द के उपन्यासों में चित्रित पात्रों की प्रासंगिकता	काशी
227.	दिनेश जेठानंद गोहानी	प्रेमचन्द के उपन्यासों में सांस्कृतिक और सामाजिक संघर्ष	नागपुर
228.	प्रदीप कुमार गौतम	प्रेमचन्द के उपन्यासों में नैतिक चेतना	राजस्थान

229.	बबिता लूथरा	प्रेमचन्द एवं जयशंकर प्रसाद की कहानियों में वैयक्तिक और सामाजिक बोध	पंजाब
230.	बीना सिंह	रंगभूमि की भाषा संपदा: कोशपरक अध्ययन	गुरुकुल कांगड़ी
231.	मनीषा रानी कुच्छल	प्रेमचन्द की सौन्दर्य दृष्टि एवं सृष्टि	मेरठ
232.	रंजना जायसवाल	प्रेमचन्द का साहित्य और नारी जागरण	गोरखपुर
233.	वी.सी. जेम्स	सामाजिक प्रतिबन्ध का स्वरूप: प्रेमचन्द और गोर्की के उपन्यासों में	कोचीन
234.	शंभू लाला मीणा	प्रेमचन्द के आदर्श नारी पात्र: उपन्यासों के संदर्भ में एक अनुशीलन	राजस्थान
235.	शकुन्तला देवी	प्रेमचन्द के कथा साहित्य में ग्रामीण महिला समाज	राजस्थान
236.	शिवशंकर मित्तल	दि पीजेंटस, बालजोक और गोदान प्रेमचन्द: ऐतिहासिक संदर्भ और रचनात्मक दृष्टि	काशी
236.	शेख सक्सेना	प्रेमचन्द के साहित्य में मुस्लिम पात्रों का अध्ययन	राजस्थान
237.	समीर सक्सेना	प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में संघर्ष तत्व	राजस्थान
238.	सरिता राय	सोद्देश्यता के संदर्भ में प्रेमचन्द के उपन्यास	हिमाचल
239.	अनुपम श्रीवास्तव	प्रेमचन्द के उपन्यासों का समाज-शास्त्रीय अध्ययन	गोरखपुर 1994

240.	कमलजीत कौर	प्रेमचन्द: शिक्षा के संदर्भ में	जामिया
241.	किरण मित्तल	प्रेमचन्द और पद्मपिल्लै का कथा साहित्य	लखनऊ
242.	दीपा सिंह	प्रेमचन्द के कथा साहित्य में सामाजिक चेतना के विविध आयाम	काशी
243.	नूतन शंखधर	प्रेमचन्द के उपन्यासों में युगीन संदर्भ	रूहेलखंड
244.	प्रीति भार्गव	प्रेमचन्द के उपन्यासों में लोक जीवन का चित्रण और उसमें साहित्यिक अभिनिवेश	राजस्थान
245.	बलबिन्दर कौर	मुंशी प्रेमचन्द और उड़िया उपन्यासकार फकीर मोहन का तुलनात्मक अध्ययन	गुरु नानक-देव
246.	मंगला गौरी शाही	स्वाधीनता संघर्ष के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्द का कथा साहित्य	गोरखपुर
247.	विजय कुमार मिश्र	प्रेमचन्द के कथा साहित्य में सामाजिक चेतना	विक्रम
248.	सुरेन्द्र कुमार गुप्ता	भारत की जातीय संरचना और प्रेमचन्द के उपन्यास	राजस्थान
249.	चिमन भाई ईश्वर भाई	गोदान तथा मनीवनी भवाई में अभिव्यक्त ग्राम्य संस्कृति एवं दृष्टिकोण का तुलनात्मक अध्ययन	सरदार पटेल 1995
250.	डी. गिरिजा	प्रेमचन्द के कथा साहित्य में चित्रित सामाजिक धार्मिक समस्यायें	केरल
251.	भगवान सिंह सेंगर	प्रेमचन्द के उपन्यासों में मानवीय संवेगों की भाविक अभिव्यंजना	बुंदेलखंड

252.	मदन लाल शर्मा	प्रेमचन्द के कथा साहित्य में प्रगतिशील चेतना का विश्लेषण	हिमाचल
253.	आशा अग्रवाल	प्रेमचन्द की जीवनियों के संदर्भ में उनके साहित्य का अध्ययन	मेरठ 1996
254.	कुंवरपाल शर्मा	गोदान और मैला आंचल की भाषा का तुलनात्मक अध्ययन	मेरठ
255.	मधुरानी त्यागी	प्रेमचन्द के उपन्यासों के संवादों की भाषा का समाजशास्त्रीय अध्ययन	मेरठ
256.	रीता चंद	प्रेमचन्द और ताराशंकर बंधोपाध्याय के प्रमुख उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ	पंजाबी
257.	रेखा शर्मा	प्रेमचन्द की कहानियों में निरूपित युग-बोध	कुरुक्षेत्र
258.	सीमा गुप्ता	उपन्यासकार प्रेमचन्द: व्यक्तित्व और कृतित्व	रुहेलखंड
259.	सीमा श्रीवास्तव	प्रेमचन्द के कथा साहित्य में मध्य वर्ग	रीवा
260.	हेमलता महीश्वर 1997	प्रेमचन्द के साहित्य में मानव मूल्य का संदर्भ	घासीदास
261.	अनिल कौशिक	सांमतीय अभिजात्य के संदर्भ में प्रेमचन्द और शरत् चन्द्र के नारी पात्रों की तुलना	मेरठ
262.	आर.बी. भंडारकर	प्रेमचन्द साहित्य में प्रयुक्त व्यक्ति-वाचक नामों का भाषापूरक अध्ययन	बिहार
263.	जावेद अख्तर	प्रेमचन्द पर गांधीवाद के प्रभाव का अध्ययन	जे.एन.यू.

264.	प्रतिभा	प्रेमचन्द की कहानियों में शाश्वत-सत्य एवं सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति	रुहेलखंड
265.	मधुलिका पाण्डेय	प्रेमचन्द की कहानियों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ	काशी
266.	सविता रानी	प्रेमचन्द की कहानियों का विकासात्मक अध्ययन	रुहेलखंड
267.	सविता सिंह	प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में बदलते जीवन मूल्यों और नारी पात्रों की सामाजिक भूमिका	काशी
268.	अन्विता श्रीवास्तव	प्रेमचन्द की कथा वृत्तियों की दृश्य माध्यमों में प्रस्तुति	गोरखपुर 1998
269.	अशोक कुमार	प्रेमचन्द की कहानियों में यथार्थ बोध	गुरुकुल कांगड़ी
270.	कमल गोखले	प्रेमचन्द और आप्टे का तुलनात्मक अध्ययन	लखनऊ
271.	कीर्ति बाला	स्त्री चेतना और प्रेमचन्द के उपन्यास	गोरखपुर
272.	रूचि राय	प्रेमचन्द विषयक जीवन ग्रन्थों का अध्ययन	लखनऊ
273.	श्रुति गुप्ता	गोदान में पुरुषवाचक सर्वनाम: रीतिवैज्ञानिक अध्ययन	कानपुर
274.	सुखलाल	प्रेमचन्द के उपन्यासों का जीवन मूल्यपरक अध्ययन	रुहेलखंड
275.	इन्द्रसेन वर्मा	दलितों का मुक्ति संघर्ष तथा तथा प्रेमचन्द का साहित्य	गोरखपुर 1999

276.	राजकुमारी	भारतीय नवजागरण और कहानीकार प्रेमचन्द	महर्षि दयानन्द रोहतक
277.	राजेन्द्र सिंह	भारतीय नवजागरण के संदर्भ में प्रेमचन्द का उपन्यास साहित्य	महर्षि दयानन्द रोहतक
278.	पवन कुमार	प्रेमचन्द के उपन्यासों में युवा वर्ग	महर्षि दयानन्द रोहतक 2000
279.	मीनाक्षी सिंह	प्रेमचन्द और फणीश्वर रेणु के उपन्यासों में आंचलिक एवं ग्रामीण संवेदना	कानपुर
280.	रश्मि शर्मा	प्रेमचन्द के उपन्यासों में पूंजीवादी व्यवस्था और नवीन युग संदर्भ	राजस्थान
281.	रश्मि श्रीवास्तव	प्रेमचन्द के उपन्यासों में व्यक्त नारी समस्याओं का अध्ययन	जबलपुर
282.	वर्षा सिंह	प्रेमचन्द के उपन्यासों में पारिवारिक जीवन का सामाजिक अध्ययन	कुमाऊं
283.	सुखवीर सिंह	प्रेमचन्द के कहानी साहित्य में राजनीतिक चेतना	महर्षि दयानन्द रोहतक
284.	सुधा बुंदेला	प्रेमचन्द के उपन्यासों में दलित चेतना	महर्षि दयानन्द रोहतक

285.	सुनीता	प्रेमचन्द की कहानियों में चित्रित नारी	महर्षि दयानन्द रोहतक
286.	सुमित्रा कुमारी	प्रेमचन्द की कहानियों में दलित चेतना	महर्षि दयानन्द रोहतक
287.	अरविन्द कुमार झा	प्रेमचन्द की कहानियों का वस्तुपरक अध्ययन	बिहार 2001
288.	ए. डिलोरम	प्रेमचन्द और आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास साहित्य में चित्रित नारी समस्याओं का तुलनात्मक अनुशीलन	बंगलौर
289.	कंचन सिंह	पात्र परिकल्पना और प्रेमचन्द का कथा साहित्य	गोरखपुर
290.	पी.जी. शशीकला	प्रेमचन्द और केशवदेव के उपन्यासों में सामाजिक समस्यायें: एक तुलनात्मक अध्ययन	केरल
291.	सविता त्यागी	प्रेमचन्द की भाषा का लोक तात्विक विवेचन	मेरठ
292.	अनिता मिन्ज	प्रेमचन्द के उपन्यासों में नारी जीवन की समस्यायें: नवजागरण के विशेष संदर्भ में	जे.एन.यू. 2002
293.	अविनाशचन्द्र पाण्डेय	प्रेमचन्द के कथा साहित्य में जनवादी चेतना	काशी

294.	आर. क्लोमिना अम्माल	प्रेमचन्द के उपन्यासों पर आधारित साहित्यिक हिन्दी के व्यवहारिक तत्व	अविनाश लिंगम कोयम्बूर
295.	चन्द्रावती नागेश्वर	प्रेमचन्द के उपन्यासों में नारी अस्मिता: युगीन संदर्भ	घासीदास
296.	नरेशचन्द्र गोयल	प्रेमचन्द के उपन्यासों में पात्र संरचना	राजस्थान
297.	पेनु सहगल	प्रेमचन्द की कहानियों में पारिवारिक संबंधों का स्वरूप विश्लेषण	जामिया
298.	रमेश पाल चौहान	प्रेमचन्द दर्शन	गढ़वाल
299.	रीना राजपूत	प्रेमचन्द और अमृतलाल नागर के उपन्यासों में नारी की अवधारणा: एक अध्ययन	रूहेलखंड
300.	सुमन प्रभा	प्रेमचन्द के साहित्य में दलित प्रश्न: गांधी अम्बेडकर विचारधारा के आलोक में	जे.एन.यू.
301.	जय श्री राम	गोदान का सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन	रांची 2003
302.	निशा जैन	प्रेमचन्द और अमृतलाल नागर के उपन्यासों के नारी चरित्रों का तुलनात्मक अध्ययगन	राजस्थान
303.	राजकुमारी	भारतीय नवजागरण और कहानीकार प्रेमचन्द	महर्षि दयानन्द रोहतक 2004

304.	सुनीता	प्रेमचन्द की कहानियों में चित्रित ग्राम्य जीवन	महर्षि दयानन्द रोहतक
305.	जीतेन्द्र कुमार	दलित चेतना का अनर्विरोध और प्रेमचन्द के उपन्यासों में दलित चेतना	काशी 2005
306.	वी. कंचनमाला	प्रेमचन्द के साहित्य में अभिव्यक्त मानवता	आन्ध्र
307.	सुशीला पटेल	प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यासों में मूल्य संक्रमण और युग-बोध	इन्दौर
308.	सोनम	मुंशी प्रेमचन्द का नरेन्द्र खजूरिया की कहानियों पर प्रभाव (डोगरी)	जम्मू
309.	अनिल कुमार नामदेव	प्रेमचन्द के उपन्यासों में समाज और उसकी संघर्ष चेतना	सागर 2006
310.	ज्योतिपाठक	प्रेमचन्द के उपन्यासों में मध्य वर्गीय चेतना	इन्दौर
311.	विमलकांत सिंह	प्रेमचन्द के कथा साहित्य और बाइबल में दलित मुक्ति की अवधारणा का तुलनात्मक अध्ययन	सागर
312.	शकुन्तला त्रिलोकीनाथ द्विवेदी	प्रेमचन्द और जैनेन्द्र के औपन्यासिक नारी-पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन	बड़ौदा

कुछ और

1.	अमीया पाल	प्रेमचन्द की भाषा का अध्ययन	कलकत्ता
2.	उर्मिला तिवारी	प्रेमचन्द के कथा साहित्य में लोकतत्व	राजस्थान
3.	उषा कृष्ण	प्रेमचन्द के नाटकों में अन्तर्द्वन्द्व	दिल्ली
4.	किशोरी लाल	प्रेमचन्द के कथा साहित्य में शहरी जीवन	इलाहाबाद
5.	कुसुम अग्रवाल	प्रेमचन्द युगीन हिन्दी उपन्यास में गांधी दर्शन	दिल्ली
6.	कौशल	प्रेमचन्द का कथा साहित्य: मार्क्सवादी दृष्टि	दिल्ली
7.	जवाहर लाल मिश्र	प्रेमचन्द और शरत्चन्द्र के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन	भागलपुर
8.	निर्मला शर्मा	प्रेमचन्द साहित्य का समाजशास्त्रीय अध्ययन	इलाहाबाद
9.	पी. के. राय	प्रेमचन्द और शरत् के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन	विक्रम
10.	प्रतापसिंह नेगी	प्रेमचन्द का हंस और युग-चेतना के निर्माण में उसका योगदान	दिल्ली
11.	बख्शी गिरीश चन्द्र	मुंशी प्रेमचन्द तथा ताराशंकर बन्धोपाध्याय के उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन	दिल्ली
12.	बलवन्त सिंह राठौड़	प्रेमचन्द के कथा साहित्य का लोक जीवनपरक अध्ययन	विक्रम

13.	माया रानी	प्रेमचन्द के उपन्यासों में नारी	रोहतक
14.	मीरा रानी शुक्ल	प्रेमचन्द और विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक के कथा साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन	कानपुर
15.	विद्यानन्द जैन	प्रेमचन्द के उपन्यासों में जन-जीवन का चित्रण	भोपाल
16.	शकुन्तला तिवारी	शरत्चन्द्र और प्रेमचन्द के नारी पात्रों का समाजशास्त्रीय अध्ययन	भागलपुर

1976	6
1977	3
1978	6
1979	6
1980	7
1981	7
1982	5
1983	8
1984	9
1985	8
1986	11
1987	8
1988	12
1989	12
1990	16
1991	13
1992	10

1993	17
1994	10
1995	4
1996	8
1997	7
1998	7
1999	3
2000	9
2001	5
2002	9
2003	2
2004	2
2005	4
2006	4
अन्य	16

विश्वविद्यालयानुसार शोधकार्य संस्था

1.	अलीगढ़	अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय	1
2.	अवध	डॉ० राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय फैजाबाद	2
3.	आगरा	आगरा विश्वविद्यालय (डॉ० भीमराव) अम्बेडकर विश्वविद्यालय	9
4.	आगरा विद्यापीठ	क म.	2
5.	आन्ध्र	आन्ध्र विश्वविद्यालय वाल्टेयर विशाखापटनम्	7
6.	इन्दौर	देवी अहिल्या विश्वविद्यालय	2
7.	इलाहाबाद	इलाहाबाद विश्वविद्यालय	20
8.	उत्कल	उत्कल यूनिवर्सिटी भुवनेश्वर	1
9.	उस्मानिया	उस्मानिया विश्वविद्यालय हैदराबाद	2
10.	कर्नाटक	कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़	1
11.	कलकत्ता	कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता	4
12.	कानपुर	छत्रपति शाहू जी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर	8

13.	काशी	काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी	24
14.	काश्मीर	काश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर	1
15.	कुमाऊँ	कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल	3
16.	कुरुक्षेत्र	कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय	2
17.	केरल	केरल विश्वविद्यालय, तिरूवंतपुरम	6
18.	कोचीन	कोचीन विज्ञान एवं तकनीकी विश्वविद्यालय, कोचीन	2
19.	कोयम्बदर	भारतिमार यूनिवर्सिटी	1
20.	गढ़वाल	हेमवती नन्दन बहुगुणा विश्वविद्यालय श्रीनगर (गढ़वाल)	3
21.	गुजरात	गुजरात विश्वविद्यालय, अहमदाबाद	1
22.	गुरुकुल कांगड़ी	गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार	3
23.	गुरु नानक देव	अमृतसर विश्वविद्यालय	1
24.	गुलबर्गा	गुलबर्ग विश्वविद्यालय ज्ञानगंगा गुलबर्ग	1
25.	गोरखपुर	दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय	12
26.	घासीदास	गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, विलासपुर	3
27.	जबलपुर	रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय	3
28.	जम्मू	जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू	1
29.	जामिया	जामिया सिल्लिया इस्लामिया नई दिल्ली	2
30.	जीवा जी	जीवा जी विश्वविद्यालय, ग्वालियर	1
31.	जे.एन.यू.	जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय नई दिल्ली	8

32.	जोधपुर	जय नारायण व्यास यूनिवर्सिटी	4
33.	दक्षिण गुजरात		
34.	दिल्ली	दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली	20
35.	नागपुर	नागपुर विश्वविद्यालय	5
36.	पंजाब	पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़	13
37.	पंजाबी	पंजाबी विश्वविद्यालय, पटियाला	1
38.	पटना	पटना विश्वविद्यालय	5
39.	पूना		3
40.	बंगलौर	बंगलौर विश्वविद्यालय	4
41.	बड़ौदा	महाराजा सयाजी राव विश्वविद्यालय बड़ौदा	1
42.	बम्बई	बम्बई विश्वविद्यालय	3
43.	बहरामपुर	बहरामपुर विश्वविद्यालय	1
44.	बिहार	बिहार विश्वविद्यालय, मुज़फ्फरपुर	7
45.	भागलपुर	तिलक मंझही, भागलपुर युनिवर्सिटी	7
46.	भोपाल	बरकतउल्लाह विश्वविद्यालय, भोपाल	3
47.	मगध	मगध विश्वविद्यालय, बोधगया	7
48.	मिथिला	ललितनारायण मिथिला विश्वविद्यालय दरभंगा	3
49.	मेरठ	चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ	15
50.	मैसूर	मैसूर विश्वविद्यालय	1
51.	रविशंकर	रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर	2
52.	रांची	रांची युनिवर्सिटी, रांची	7
53.	राजस्थान	राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर	20

54.	रीवा	डॉ. अवधेशप्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा	5
55.	रूहेलखंड	महात्मा ज्योतिबा फुल्ले रूहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली	9
56.	रोहतक	महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय	11
57.	लखनऊ	लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ	11
58.	विक्रम	विक्रम युनिवर्सिटी, उज्जैन	9
59.	विश्वभारती	शान्ति निकेतन	1
60.	शिवा जी	शिवा जी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर	2
61.	सरदार पटेल	सरदार पटेल विश्वविद्यालय, वल्लभ विद्यानगर	3
62.	सागर	डॉ. हरी सिंह गौढ़ विश्वविद्यालय, सागर	9
63.	सौराष्ट्र	सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट	1
64.	हिमाचल	हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला	2
65.	हैदराबाद	हैदराबाद विश्वविद्यालय	1

संकलन : सुश्री मोनिका तनेजा
शोध छात्रा
हिन्दी-विभाग
गुरुनानक देव युनिवर्सिटी
अमृतसर-143005

वर्तमान युग में प्रेमचन्द की प्रासंगिकता

रुबी जुत्थी

हिन्दी-उर्दू गद्य साहित्य में प्रेमचन्द एक ऐसी महान शख्सियत है, जिन्होंने अपनी लेखनी के बल से पाठक के मन और मस्तिष्क पर राज किया है, क्योंकि इससे पहले हिन्दी-उर्दू का पाठक एवं साहित्य तिलस्मी, ऐय्यारी और काल्पनिक आदि विषयों के दलदल में डूबा हुआ था।

सन् 1900 के आसपास हिन्दी-उर्दू साहित्य में एक ऐसे सूर्य का उदय हुआ। जिसने अपने उज्जवल प्रकाश से उपरोक्त दलदल से साहित्य एवं पाठक को बाहर निकालकर समाज की कड़वी सच्चाईयों के कठोर धरातल पर ला खड़ा किया है और ऐसा प्रतीत होता है। जब तक हिन्दी-उर्दू साहित्य जीवित है। तब तक यह सूर्य अपनी किरणों से विभिन्न समाजों के पाठकों, विचारकों आदि के मस्तिष्क के अंधेरे कोणों में उजाला फैलाता रहेगा। इस महान लेखक, जागरुक पत्राकार एवं नाटककार का असली नाम धनपतराय और चाचा द्वारा प्रदत्त नाम नवाबराय था।

धनपतराय जी उर्दू के लेखक थे और कहानियां लिखते थे किन्तु 'सेवासदन' उपन्यास से पूर्व उनके कृतियों की संख्या, क्रम, लेखन-तिथि एवं प्रकाशन तिथि पर मतभेद होने के कारण 'असरारे मआबिद उर्फ देवस्थान रहस्य' को पहला उर्दू लघु उपन्यास न मानकर 'हम खुरमा हम सबाब' को पहला उर्दू लघु उपन्यास मानते हैं, जबकि असरारे मआबिद उर्फ देवस्थान रहस्य का रचनाकाल सन् 1901 सितम्बर से सन् 1903 के बीच अनुमानित है और 'हम खुरमा हम सबाब' का सन् 1904 बताया गया है।

सन् 1907 में इनका कहानी संग्रह 'सोज़े वतन' जब्त हुआ, तो उन्होंने अपने असली नाम (धनपतराय) को त्याग कर प्रेमचन्द के नाम से लिखना आरम्भ किया। प्रेमचन्द जी को हिन्दी में आने के पीछे हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री मन्नन जी के कहने पर ही प्रेमचन्द जी ने अपनी उर्दू कहानियों का हिन्दी अनुवाद करके 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित किया था। जब प्रेमचन्द जी ने इस को महसूस किया कि हिन्दी प्रेमियों ने ही उनको अच्छी तरह पहचाना और अपनाया तो धीरे-धीरे उर्दू से हटकर हिन्दी के ओर आ गए।

सन् 1918 में गोरखपुर के निवासी महावीर प्रसाद द्विवेदी पोद्दार के कहने पर प्रेमचन्द ने 'सेवासदन' उपन्यास हिन्दी में लिखा तो हिन्दी कथासाहित्य में एक नए युग की शुरुआत हो गई। इसके बाद लेखक ने सन् 1921 में गांधीजी के आन्दोलन से प्रभावित होकर 'नमक का दारोगा' नामक प्रसिद्ध कहानी लिखी। जिससे हिन्दी प्रेमी एवं समाज बेहद प्रभावित हुआ। इसके पश्चात् 8 अक्टूबर सन् 1936 तक निरन्तर हिन्दी में लिखते रहे। वह एक जागरुक पत्रकार भी रहे हैं। सन् 1923

में उन्होंने 'सरस्वती प्रेस' की नींव रखी और सन् 1930 में 'हंस' नामक पत्रिका निकाली तब से इनके नाम से मुंशी शब्द इस तरह जुड़ गया, लग रहा है यह शब्द इनके नाम का एक अंग ही है। इसके अतिरिक्त उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द 'माधुरी' पत्रिका के संपादक भी रहे है और 'साहित्यिक जागरण' का भी संपादन किया है।

कुछ लोग इस बात से अनभिज्ञ है कि प्रेमचन्द जी एक अच्छे नाटककार भी रहे हैं उनका 'कर्कता' नामक बेहद प्रसिद्ध है इसमें उन्होंने हज़रत मोहम्मद सल्लल्लाहों अलैहे वसल्लम के जीवन का इस्लाम के आरम्भिक दिनों का चित्रण किया है, जिसमें आज से 1450 साल पहले हुए युद्ध का वर्णन है। इस युद्ध की याद में वर्तमान समय में भी करोड़ों मुसलमानों की आँखें झुक जाती है।

इस महान् गद्यकार ने किसानों की आर्थिक दशा, पुलिस के अत्याचारों, घूस, ग्रामीण एवं शहरी समाज की कमियां, विधवाओं एवं वेश्याओं की समस्याओं, नारी की आभूषण प्रियता, मध्यवर्ग के खोखले प्रदर्शन आदि समस्याओं पर लेखनी चलाई है। डॉ. हज़ारी प्रसाद ने भी इन बातों का समर्थन करते हुए इनके सम्पूर्ण साहित्य का आंकलन इस प्रकार किया है– "प्रेमचन्द शताब्दियों से पददलित, अपमानित उपेक्षित कृष्कों की आवाज थी। पर्दे में कैद, पद पर लांछित और असहाय नारी-जाति की महिमा के जबरदस्त वकील थे, गरीबों और बेकारों के महत्व के प्रचारक थे.....।[1] (हिन्दी अभ्यास पुस्तिका : पृष्ठ न. : 178)

अतः यह बात स्पष्ट है कि दस दशकों के पश्चात् भी उन्हीं समस्याओं एवं विषयों पर लिखा जाता है, तो प्रेमचन्द जैसा तब के युग के पाठक का प्रिय था वैसा ही दस दहाईयों के उपरान्त भी पाठक का

प्रिय है। गाँव बदल गए और शहर बढ़ गए। भारतीयों की आर्थिक दुर्दशा कम हुई है, परन्तु इतनी भी कम नहीं हुई कि प्रेमचन्द अप्रासंगिक हो जाए। प्रेमचन्द तब अप्रासंगिक हो जाएगा जब हमारे भारतीय युवक रमानाथ (झूठा प्रदर्शन) 'सेवासदन' उपन्यास के रामदास (रामनामी दुशाला ओढ़कर महिलाओं से छल करता था) इसी उपन्यास की सुमन (जिससे यह समाज वेश्या बना देता है। 'निर्मला' उपन्यास की निर्मला (दहेज एवं धनाभाव के कारण निर्मला चालीस वर्षीय पुरुष के साथ विवाह करने के लिए विवश होती है।) मंत्र कहानी (जो साम्प्रदायिक समस्या पर आधारित है। 'गोदान' उपन्यास कृषि प्रधान महाकाव्य ही नहीं बल्कि सामाजिक एवं धार्मिक शोषण का दस्तावेज़ है। जब तक यह समस्याएं एवं पात्र जीवित रहेगें तक तक प्रेमचन्द जी प्रासंगिक है।

प्रेमचन्द जी के जीवन की अन्तिम इच्छा यही थी जिस 'हंस' नामक पत्रिका को उन्होंने आरम्भ करवाया था। वह अवश्य चलता रहे। इस अन्तिम प्रयास के लिए उन्हें आर्थिक संकट के कारण उन्हें फिल्मी दुनिया में जाना पड़ा लेकिन असफल होकर लौटे।

वे पहले किसी वाद से जुड़े नहीं थे, किन्तु सन् 1936 में उन्होंने जब प्रगतिशील लेखक संघ के अधिवेशन की लखनऊ में अध्यक्षता की थी, तो वहीं पर उसी वर्ष हिन्दी साहित्य को 'गोदान' उपन्यास भी प्रदान किया था, इसी वर्ष अन्तिम उपन्यास 'मंगलसूत्र' भी आरम्भ किया था, जो निधन (8 अक्टूबर सन् 1936) के कारण अधूरा रह गया।

अत: निधन होने के उपरान्त वह जीवित है क्योंकि वर्तमान समय में भी पूंजीवाद, जातिवाद, भाषावाद, साम्प्रादिकता आदि जैसी समस्याएं

विकराल रूप में खड़ी है। जब तक यह समस्याएं हैं तो उनका अप्रासंगिक होना या प्रासंगिकता पद प्रश्न चिन्ह लगाना बेमानी है।

प्रेमचन्द ने अपने किताबों में उपनिवेशवारी दौर (स्वातंत्र्योत्तर काल) में ही भारत के बनते राष्ट्र का ख़ाका तैयार किया है। यह मुख्य रूप से स्वाधीनता-आन्दोलन के रचनाकार थे। किसान इनकी रचना का मूल सरोकार और संवेदना है।

प्रेमचन्द– एक कथाकार

डॉ0 ज़ाहिदा जबीन

प्रेमचन्द का जन्म 31 जुलाई सन् 1880 को बनारस से चार मील दूर लमही गांव में हुआ था। पिता अजायबराय डाकखाने में मामूली नौकर थे। प्रेमचन्द का बचपन का नाम घनपतराय था। वे 8 साल के थे तो उनकी माता का देहान्त हुआ। पिता ने दूसरा विवाह किया तो बालक को विमाता का निष्ठुरता का सामना करना पड़ा। घनपतराय 15 साल के थे तो पिता ने उनकी शादी कर दी। पत्नी कुरुप होने के साथ-साथ जबान की भी कठोर थी, गरीबी और संघर्ष का सामना लेखक को तब करना पड़ा, जब उनके पिता की मृत्यु हुई और उन पर विमाता, उनके दो बच्चे और अपनी पत्नी के पालन पोषण का भार पड़ा।

लेखक बचपन से ही उर्दू उपन्यास रुचि से पढ़ते थे। उन्होंने पहले उर्दू में ही लिखना आरम्भ कर किया। सन् 1893 में 'मामू के किस्से' को लेकर और सन् 1894 में 'होनहार विरवान के चिकने-चिकने पात' ये दो नाटक लिखने से आरम्भ करके सन् 1898 में प्रेमचन्द ने उर्दू में उपन्यास लिखना आरम्भ कर दिया था। सन् 1898 में एक उपन्यास लिखा जिसका विषय इतिहास से सम्बन्धित था।

सन् 1902 में 'प्रेमा' और सन् 1904-05 में 'हम खुर्मा व हम सवाब' नामक उपन्यास लिखे जिनमें विधवा-जीवन और विधवा समस्या का चित्रण हुआ। सन् 1905 में पारिवारिक कटुताओं के कारण न निभा पाने से उनकी पत्नी घर छोड़ के गई, तो प्रेमचन्द ने विधवा जीवन के प्रति कारुणिक भाव होने के कारण शिवरानी देवी नामक एक बाल-विधवा से दूसरा विवाह किया सन् 1907 में उनकी पाँच कहानियों का संग्रह 'सोजेवतन' नाम से छपा।

यद्यपि प्रेमचन्द ने हिन्दी में स्पेशल व वर्नेकूलर की परीक्षा सन् 1904 में पास कर ली थी पर वे अभी नागरी में अच्छी तरह नहीं लिख सकते थे। श्री मन्नत द्विवेदी और महाबीर प्रसाद पोद्दार के सम्पर्क से उन्होंने हिन्दी अच्छी तरह सीख ली और सन् 1913 के आस-पास उनकी कहानियां हिन्दी में निकलने लगी थीं। सन् 1920 में प्रेमचन्द ने देशभक्ति की भावना से भर कर गांधी जी के असहयोग आन्दोलन की आवाज पर अपनी बीस साल की नौकरी छोड़ कर विद्रोह का स्वर उठाया। यह विद्रोह राजनैतिक था जो ब्रिटिश सरकार के अत्याचारों के प्रति था।

प्रेमचन्द ने 'मर्यादा', 'माधुरी', 'हंस', पत्रिकाओं का सम्पादन किया। फिल्मी दुनिया में भी इनका हाथ रहा है। 'सेवासदन' उपन्यास की 'बन्जारे-हुस्न' नाम से फिल्म बनी। उनकी 'मिल मजदूर' कहानी मजदूर नामक चित्र में रूपान्तरित हुई। परन्तु प्रेमचन्द वहाँ सन्तुष्ट न रहे।

सेवा-सदन, वरदान, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, कायाकल्प, निर्मला, प्रतिभा, गबन, कर्मभूमि, गोदान, मंगल सूत्र (अपूर्ण) किराना (अप्राप्त) ये इनके उपन्यास है। सन् 1935 तक गोदान की रचना हो चुकी थी। 8 अक्टूबर

सन् 1930 को रोगग्रस्त प्रेमचन्द की मृत्यु हुई और वे 'मंगल-सूत्र' उपन्यास अधूरा छोड़ गए। यदि वे यह उपन्यास पूरा करते तो इसमें वर्ग-संघर्ष अधिक खुल कर प्रकट होता।

'वरदान' असफल प्रेम की कथा 'प्रतिज्ञा' में विधवा नारी की समस्या है। 'सेवासदन' की वेश्या समस्या को उजाकर किया है 'प्रेमाश्रम' में जमींदार और किसानों के संघर्ष का खुलकर चित्रण हुआ है। 'निर्मला' एक सामाजिक उपन्यास है, जिसमें दहेज, अनमेल विवाह, जैसी समस्याऐं देखने का मिलती हैं 'रंगभूमि' में पहली बार प्रेमचन्द ने पूंजीवाद के आगमन और पूंजीवादी पद्धति के दोषों की प्रकट किया है। यह पूंजीवादी पद्धति सामन्तवाद या जमींदारी पद्धति से भी अधिक हानिकारक और खतरनाक है। 'रंगभूमि' में प्रेमचन्द ने राजाओं के विलासपूर्ण जीवन का उल्लेख मात्र किया था, जहां 'कायाकल्प' में उनकी विलासिता का नग्न चित्र प्रस्तुत किया है। 'कायाकल्प' में प्रेमचन्द ने हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता और झगड़ों का भी सजीव चित्रण किया है। 'गबन' में मध्यवर्ग के खोखले जीवन, आय-व्यय के असन्तुलन, दिखावे, रिश्वत, झूठ आदि का चित्रण हुआ है। 'कर्मभूमि' में अछूत समस्या और किसान (शोषित) की समस्या मिलती है। 'कर्मभूमि' में भारतीय नारी के जागरण का शंखनाद भी पाया जाता है। 'गोदान' में भारतीय समाज-व्यवस्था और कृषक जीवन का चित्र हुआ है 'मंगलसूत्र' में भी सामाजिक, आर्थिक समस्या का उल्लेख मिलता है।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी जी के अनुसार प्रेमचन्द जी की कहानियाँ संख्या में तीन सौ के लगभग है। इसके अतिरिक्त इनकी उर्दू कहानियों की संख्या एक सौ से ऊपर है। प्रेमचन्द की कहानियां परिवार,

समाज-धर्म, जीवन विषयक है। वैवाहिक जीवन की समस्या, विधवा-समस्या, वेश्यावृत्ति, छूतछात, कृषक शोषण, सामाजिक शोषण, ध ार्मिक समस्या, औद्योगिक समस्या, सामंती व्यवस्था, पूंजीवाद, साम्प्रदायिकता और भारतीय स्वाधीनता से सम्बन्धित रही हैं।

अली सरदार जाफरी ने अपनी पुस्तक 'तरक्की पसंद अदब' में लिखा है कि, 'उनके (प्रेमचन्द) उपन्यासों और कहानियों में आधारभूत दृष्टिकोण सामाजिक और आर्थिक समस्याऐं है। लेकिन उनका समाधान सामाजिक नहीं व्यक्तिगत होता है और वह इन्कलाब के बजाय व्यक्तिगत आध्यात्मिक सुधार की राह अपनाते हैं।"

भीष्म साहनी प्रेमचन्द के 'मानवीय नजरिये' को बहुत अहमियत देते हैं। समाज की विभिन्न समस्याओं से जूझते औरत-मर्द को वह सुलझाने के अन्त तक संघर्ष करते दिखाते हैं। प्रेमचन्द ने सामाजिक अन्धविश्वास जर्जर पुरातन रुढ़ियों और अकमर्णयता को भी जीवन के विकास में बाधा स्वीकार किया है। शिक्षित समुदाय भी जब पुरातन रुढ़ियों के आगे नतमस्तक होता है तो वह आक्रोश से भर उठते हैं। दहेज-प्रथा, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, वेश्यावृत्ति, मृतक-भोज, बेगार-प्रथा, सूदखोरी आदि कुछ ऐसी सामाजिक विसंगतियां हैं जिन्हें उन्होंने स्वस्थ्य समाज में लिए शत्रु माना है। 'आहुति' की रूपमणि अपनी आकांशा प्रकट करते हुए कहती है "मैं समाज की ऐसी व्यवस्था देखना चाहती है जहाँ कम से कम विषमता को आश्रय मिले।"

पाकिस्तानी लेखिका रजिया फसीह ने प्रेमचन्द के कथा-वस्तु की विशेषताओं की ओर संकेत करते हुए लिखा है–"वे किसानों का इस्तेहशाल (शोषण) करने वालों के खिलाफ आवाज़ उठाते है। जंगे-आजादी

तथा इस्तहशाल की जंग में वे खुद तथा उनके किरदार भरपूर हिस्सा लेते हैं–अगर प्रेमचन्द के अफसाने आज भी खून में उबाल लाते हैं तो यह इस बात का सबूत है कि उनमें ऐसी आफाकी सच्चाई (व्यापक सत्य) है जो आज भी हमारे दिलों को छू लेती है।"

प्रेमचन्द ने स्वाधीनता का जीवन तथा परतन्त्रता को मृत्यु बताया है। 'खुचड़' कहानी में उन्होंने यही बात कही है–"जीवन स्वाधीनता का नाम है गुलामी तो मौत है।" राजनीति और सांप्रदायिकता सद्भाव के लिए प्रेमचन्द ने बहुत कुछ लिखा है। वह नहीं चाहते थे कि राजनीति स्वार्थ के समक्ष सांप्रदायिक संघर्ष हों। उन्होंने हिन्दू-मुसलमान दोनों को एक साथ मिलकर कार्य करने की प्रेरणा प्रदान की। उनका विश्वास था कि यदि वर्ग-भेद अथवा वर्ग-संघर्ष की समस्या उत्पन्न होगी तो देश तबाह हो जाएगा। भवानी प्रसाद मिश्र ने प्रेमचन्द की प्रतिभा की तुलना गांधी जी की राजनीतिक चेतना से की है।

डॉ० रामविलास शर्मा के अनुसार, 'प्रेमचन्द एक यथार्थवादी कलाकार है।' यथार्थावाद अर्थात् वास्तविकता की धरती से जुड़े प्रश्नों और समस्याओं को प्रेमचन्द ने उजागर किया है। अपने कथा-साहित्य में जिस घटना और विषय को उन्होंने प्रस्तुत किया है वह वास्तविक ही लगती हैं और यथार्थवाद में उन्होंने आदर्शवाद का समावेश भी किया है। शायद नग्न यथार्थ अश्लील और कटु लगता है। शायद लेखक यथार्थ समस्या के साथ समाधान भी देना चाहते हैं। लेकिन उन्होंने अपने इस यथार्थवाद पर आंच नहीं आने दी है। यह प्रेमचन्द की जागरूकता ही है कि उन्होंने घटनाओं के संयोजन में 'वास्तविकता' को नष्ट नहीं होने दिया, इसलिए इनकी रचनाऐं अद्यावद्यि प्रासंगिक और जीवन्त है।

प्रेमचन्द ने मानव और उसके समाज का चित्र खींचते हुए यह ध्यान रखा है कि एक तो वह मानव समाज जो प्रचलित परम्पराओं से जुड़ा है–धर्म, तीर्थ स्थलों, पूजा-पाठ, मन्दिरों मस्जिदों आदि के प्रेमसूत्र में मजबूती से बंधा हुआ है। साम्प्रदायिकता, धर्म के नाम पर दंगे आज भी कोई नई बात नहीं है। आज भी ऐसे लोगों की कमी नहीं जो दूसरों की विवशता और निर्धनता का लाभ उठाने से नहीं चूकते। अशिक्षा, अन्धविश्वास और भाग्यवादी चिन्तन के कारण आज भी लोगों को कष्ट उठाना पड़ता है।

दहेज, अनमेल-विवाह, पति की शंकालू-ईष्यालु दृष्टि, निष्ठुर व्यवहार, वधुओं का तंग आकर आत्माहत्या करना, नारी का आभूषण प्रेम, पत्नी की इच्छापूर्ति के लिए सरकारी धन का दुरुपयोग आदि स्थितियां जीवन की सच्ची झांकी प्रस्तुत करती हैं।

प्रेमचन्द का कथा-साहित्य वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक, नैतिक, सांस्कृतिक और प्रगतिशील वस्तुओं के ताने बाने पर अव्यवस्थित है। इसमें जीवन के अनेक चित्र प्राप्त होते हैं, जो यथार्थ और वास्तविकता के धरातल पर चित्रित है। प्रेमचन्द का साहित्य अतीत और वर्तमान के अतिरिक्त भविष्य की भी मानव चेतनाओं से सम्पृक्त है– यह निर्विवाद है।

प्रेमचन्द ने अपने कथा-साहित्य में जिस प्रकार की वस्तु का चयन किया है, वह भारतीय समाज के सामान्य मानव-जीवन से सम्बन्धित है। प्राय: ग्रामीण जीवन जिसमें भारत की अधिकांश जनता निवास करती है, से सम्बन्धित चित्र लिखे गए है। डॉ० नत्थन सिंह के विचार से–'प्रेमचन्द कोरे उपन्यासकार नहीं थे वरन् वह एक सक्षम सोशल इंजीनियर भी थे। अपनी कथा-वस्तु के माध्यम से समाज में व्याप्त सम्पूर्ण विकृतियों का

उद्‌घाटन करना एवं उनका उपचार करना वह अपना परम कर्तव्य मानते थे। इसी सामाजिक एवं साहित्यिक चेतना के साथ आपने हिन्दी कथा-साहित्य के क्षेत्र, स्वरूप तथा उद्देश्य का विधान किया।'

प्रेमचन्द ने अपने कथा-साहित्य में मानव-जीवन की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति के निमित्त संवादों की विशेषता को स्वीकार किया है। यही कारण है कि प्रेमचन्द के कथा-साहित्य में कथानक को गति देने वाले तथा पात्रों के चारित्रिक वैशिष्ट्य को उभारने वाले संवादों का कुशल प्रयोग प्राप्त होता है।

डॉ० सुरेश सिन्हा के अनुसार 'प्रेमचन्द के संवाद अत्यन्त लम्बे और उबाऊ होते हैं। इन संवादों को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कथानक जहाँ का तहां रुक गया है।' अतः प्रेमचन्द के संवादों में गतिशीलता का अभाव है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार–'प्रेमचन्द के चरित्र, वर्गगत, जातिगत या प्रतीकात्मक होते हैं। जमींदार, किसान आदि में अपने वर्ग की साधारण विशेषताओं का चित्रण किया गया है, वह भी परिस्थितयों के गहरे घात-प्रतिघात की भूमिका पर नहीं।'

डॉ० श्यामसुन्दर घोष का विचार है–'प्रेमचन्द के उपन्यासों में ग्राम्य और उच्चवर्गीय जीवन का चित्रांकन हुआ है। उच्चवर्गीय चित्र अपने कार्यों से ही अपनी स्थिति का पता बता देते हैं।

प्रेमचन्द ने समाज की उपेक्षिता, तिरस्कृत विधवाओं, परिस्थितियों से पीड़ित वेश्याओं, आभूषण-प्रियता से जीवन में विषमता उत्पन्न करने वाली नारियों, प्रेम में सर्वस्व न्यौछावर करने वाली प्रेमिकाओं, परपति-कामना-ग्रस्त स्वार्थी स्त्रियों, शंकालु पति से पीड़ित पत्नियों की

मार्मिकता से सम्पन्न, आधुनिकाऐं, भाग्य से पीड़ित कुमारिकाये, सत्याग्रह में स्वेच्छा से सम्मालित होने वाली नारियों की चारित्रिक विशेषताओं का उद्‌घाटन बड़ी कुशलता के साथ किया गया है।

भाषा प्रयोग की दृष्टि से प्रेमचन्द का हिन्दी कथा-साहित्य में युगान्तरकारी स्थान है डॉ० रामविलास शर्मा ने प्रेमचन्द की भाषा के बारे में लिखा है–'भाषा को सबल बनाने के लिए प्रेमचन्द ने साधारण से साधारण बात को भी अपनाने में असहित्यिकता का मान नहीं किया .....।' डॉ० विवेकी राय के अनुसार प्रेमचन्द की भाषा को जन-भाषा मानते है। जनभाषा में जो सरलता, सहजता, अपनत्व और माधुर्य है, वह अन्यत्र कहां?

प्रेमचन्द ने अपने कथा साहित्य के माध्यम से भारतीय जनता को जो संदेश दिया उसमें संघर्ष और समस्याओं से अनवरत जूझने, अंधविश्वास, रुढ़ियों, पाखंडों, आडम्बरों पर तीखा प्रहार करने, कर्मशीलता, सत्य, अहिंसा और ईमानदारी पर अटूट आस्था रखने, अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सचेष्ट रहने, समाज और राष्ट्र के उत्थान के प्रति बलिदान होने तथा मानवता की विजय-पताका फहराने का अमर घोष विद्यमान है।

प्रेमचन्द का साहित्य जन-साहित्य है। वह जनता के सुख-दुख और संघर्ष में आत्मीय मित्र की भांति काम आता है। प्रेमचन्द के साहित्य की लोकप्रियता से यह सिद्ध होता है कि निर्धनता, भूख और अन्याय से पीड़ित जनता के लिए जो साहित्य लिखा जाता है, वह अमर और स्थायी हो जाता है।

हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर

प्रेमचन्द की रचनाओं में वर्णित समाज

मोहम्मद मेराज अहमद

प्रत्येक युग में साहित्यकार भी समाज सुधारकों के एक वर्ग के रूप में सामाजिक उत्थान में महत्वपूर्ण योगदान देते रहे हैं। वस्तुतः साहित्यकार समाज का मार्गदर्शक और प्रेरणास्त्रोत है जो अच्छाइयों को उभारकर व बुराईयों को दूर करने हेतु प्रयासरत रहता है। प्रत्येक देश के सामाजिक उत्थान में वहां के साहित्यकार महत्वपूर्ण योगदान होता है। सन् 1948 में साहित्य के क्षेत्र में नोबेल पुरस्कार पाने वाले T.S. Eliot ने अपनी सर्वाधिक प्रसिद्ध कृति 'Tradition and Individual Talent' में लिखा है– "सच्चा साहित्यकार वैज्ञानिक के समान ही वस्तुनिष्ठ निर्वैयक्तिक अर्थात् अव्यक्तिवादी होना है, जिसका लेखन कार्य आत्मनिरपेक्ष होता है।" वास्तव में साहित्य की समाज में फैले अज्ञान, अंधविश्वास और अदूरदर्शिता रूपी अंधकार को सूर्य की भाँति दूर करता है। आचार्य मम्मट 'काव्यप्रकाश' में लिखते हैं कि– "यश, धन, व्यवहार, परिज्ञान, आनन्दानुभूति व समाज के मार्गदर्शनार्थ साहित्य सृजन किया जाता है।" अतः स्पष्ट है कि जनहित ही साहित्यकार का आधार होना चाहिए। वास्तव में मुंशी प्रेमचन्द साहित्य की इस कसौटी पर खरे उतरते हैं।

'साहित्य समाज का दर्पण' होता है यह उक्ति प्रेमचन्द के साहित्यों को पढ़ने के बाद अक्षरशः सिद्ध हो जाती है। इनके साहित्यों के अध्ययन के उपरांत हमारे देश की सामाजिक व्यवस्था का यथार्थ ज्ञान हो जाता है। प्रेमचन्द ने जीवन को कुण्ठित करने वाले सभी सामाजिक समस्याओं यथा– अंधविश्वास, रूढ़िवाद, सामंतवाद, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, दम्भ, शोषण आदि सभी से घृणा करते थे। यही वजह है कि उनके उपन्यासों एवं कहानियों के पात्र सामंती व्यवस्था की गुलामी और उसस उत्पन्न जीवन-नरक से निकलने का प्रयत्न करते रहते हैं और मध्यवर्ग के श्रमजीवी लोग अपने नागरिक जीवन में निहित अन्याय, रूढ़िवाद और अंधविश्वास के विरुद्ध संघर्षशील हैं।

किसान

प्रेमचन्द ने तो वैसे सभी वर्गों एवं सभी विषयां पर लिखा, लेकिन वे मुख्यतः किसानों के लेखक कहलाते हैं। उनके तीन सौ कहानियों में से अधिकांश ग्रामीण जीवन का गहरा अनुभव है, उसी के कारण वस्तु स्थिति का नग्न यथार्थवादी चित्रण करते हैं और इस व्यवस्था में पलने वाले शोषण, अन्याय और अत्याचार को वे संदेह, सप्रमाण एवं विश्वस्त बनाकर पेश करते हैं। इस विषय पर उनका पहला उपन्यास 'प्रेमाश्रम' है। इसमें जमींदारों और उनके दरिंदो के कारण किस तरह ग्रामीण किसान पिस रहा है, उसका यथार्थ चित्रण किया है। 'गोदान' में प्रेमचन्द ने किसानों का यथार्थ प्रस्तुत किया है। इसका नायक होरी शोषित एवं दरिद्र वर्ग का प्रतिनिधि है। होरी का जीवन किसी एक व्यक्ति का जीवन नहीं है अपितु भारत के गरीब किसान का जीवन है। आज भी हमारे ग्रामीण समाज में कमोबेश यह व्यवस्था विद्यमान है।

सामंतवाद

प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के माध्यम से जमींदारों की निर्दयता एवं उनके अंधे लूट का वर्णन किया है। 'सेवासदन' में उन्होंने महंत रामदास जिनकी जमींदारी बांके बिहारी के नाम से चलती है के अत्याचार एवं धर्म के नाम पर लूट का वर्णन किया है। इस लूट में सभी अफसर एवं पुलिस की मिली भगत है। यह स्थिति आज के वर्तमान समाज में देखी जाती है। यही हाल 'कर्मभूमि' में महन्त आशाराम का है। वे अपने मुसखंडे साधुओं के द्वारा ग्रामवासियों से लगान एवं धर्म के नाम पर चंदा वसूल करते हैं। प्रेमचन्द ने धर्म के माध्यम से यह बताने की कोशिश की है कि जमींदार वर्ग धार्मिक कार्य करके सज्जनता और न्यायशीलता का भ्रम भोली जनता के सामने बनाने में सफल हो जाते हैं। जमींदार लोग इस वर्ग-विभाजन को ईश्वरीय विधान मानते हैं तथा लगान वसूली को शोषण नहीं अपितु ईश्वर प्रदत्त अधिकार समझते हैं। ऐसे लोग दान धर्म आने बराबर लोगों को नीचा दिखाने के लिए करते हैं। आज हमारे समाज में भी दान-धर्म एक दिखावा ही बनकर रह गया है।

जोत अधिकार

प्रेमचन्द चाहते थे कि समाज में व्याप्त लूट-खसोट बन्द हो, किसानों के साथ न्याय हो। इनका मानना था कि ये किसान दिन-रात मेहनत करते हैं और सबका पेट भरते हैं फिर भी यही किसान जो सबका अन्नदाता है, भूखा क्यों रहे? उनका जीवन सुखी क्यों न हो? इनको सुखी बनाने का उपाय प्रेमचन्द को पता था, जो उन्होंने अपने आदर्श पात्र प्रेमशंकर के माध्यम से 'प्रेमाश्रम' में बताया है– "भूमि

उसकी है, जो उसे जोते, शासक को ऊपज में से भाग लेने का अधिकार इसलिए है कि वह देश में शांति और रक्षा की व्यवस्था करता है जिसके बिना खेती नहीं हो सकती, तीसरे वर्ग का समाज में कोई स्थान नहीं है।"

किसानों को भूमि सौंपने के लिए प्रेमचन्द ने गांधीवादी उपाय बताया कि जमींदारों का हृदय परिवर्तन कराके किसानों को उनकी भूमि सौंप दी जाए! प्रेमचन्द ने 'प्रेमाश्रम' में सुधारवाद का यही ढंग अपनाया है। प्रेमचन्द की इस सुधारवादी साधन से प्रभावित होकर विनाबा भावे ने 'भूदान आंदोलन' प्रारम्भ किया जो सफल भी रहा। स्वतंत्रता के बाद भारत में जमींदारी प्रथा (1951) समाप्त की गई और चकबंदी एवं भूमि द्वदबंदी व्यवस्था शुरू की गई जो अभी भी लागू है।

नारी स्थिति

प्रेमचन्द के उपन्यासों और कहानियों में अनेक नारी पात्र है जिनसे हमें ज्ञात होता है कि नारी, प्रेम, विवाह, विधवा, दहेज समस्या आदि के विषय में प्रेमचन्द का क्या दृष्टिकोण था। यह तो निर्विवाद सत्य है कि इस रूढ़िगत और पुरुष प्रधान समाज में स्त्री का अस्तित्व स्वतंत्र नहीं है। कहने को तो नारी थे मानव जीवन की कर्णधार, देवी, सती चाहे कुछ भी कह दिया जाए पर वास्तव में उसकी हैसियत दासी से अधिक नहीं है। मनु का कथन है कि नारी बचपन में पिता और भाईयों के, जवानी में पति के अधीन और बुढ़ापे में पुत्रों के अधीन है। हमारे वर्तमान सामाजिक जीवन में यह कथन अक्षरशः लागू होती है। प्रेमा अथवा 'प्रतिज्ञा' उपन्यास में प्रेमचन्द ने विधवा नारी की स्थिति को दर्शाया। इसमें इस सामाजिक समस्या को सुधारवादी ढंग से सुलझाने की कोशिश

की है। सतीत्व की रक्षा प्रेमचन्द का प्रिय विषय है। वे नारी एवं पुरुष के सम्बन्ध को दूषित नहीं होने देना चाहते। 'सेवासदन' की सुमन दालमंडी में बैठकर सिर्फ नाचती गाती है लेकिन अपनी सतीत्व की रक्षा करती है। प्रेमचन्द के नारी का आदर्श है–व्यास, सेवा, और पवित्रता। आज के इस अति आधुनिक समाज में भी भारतीय नारी में ये गुण कमोबेश पाए जाते हैं।

प्रेमचन्द वर्तमान वैवाहिक व्यवस्था को पसंद नहीं करते थे। इनका मानना था कि विवाह प्रणाली इतनी दूषित हो गई है कि जो लोग धनी और समृद्ध हैं वे मनचाहा वर ढूढ लेते हैं तथा पुनः पुत्र विवाह के समय दहेज के रूप में मुंह मांगी कीमत वसूल कर लेते हैं और जो लोग निर्धन हैं अपनी लड़कियों को बेचने के मजबूर हो जाते हैं। यही दूषित वैवाहिक व्यवस्था तथा-कथित हमारे शिक्षित एवं आधुनिक समाज में आज भी विद्यमान है। दहेज एवं अनमेल विवाह को लेकर प्रेमचन्द ने 'निर्मला' नामक उपन्यास की रचना की। अनमेल विवाह जैसी समस्या हमारे समाज की स्वाभाविक समस्या है जिसकी जड़ है-दहेज। इसके चलते एक सुखी गृहस्थ जीवन कलह का अखाड़ा बन जाता है। इसके चलते आज हमारे समक्ष मनपसंद विवाह को तरज़ीह दी जा रही है, जो स्वागत योग्य कदम है।

प्रेमचन्द आदर्श दाम्पत्य जीवन उसे मानते हैं जब पति-पत्नी एक-दूसरे से हाथ में हाथ मिलाकर विकास का कदम साथ-साथ बढ़ायें। 'सेवासदन' के कृष्णचंद्र और गंगाजली, पद्म सिंह एवं सुभद्र ऐसे आदर्श पति-पत्नियां हैं। प्रेमचन्द के 'गोदान' के पति होरी और उसकी पत्नी धनिया एक दूसरे के अनुरूप हैं। जहां होरी वर्तमान सामाजिक

व्यवस्था का पालन करता है वहीं धनिया उसके दब्बूपन को पसंद नहीं करती, वह विद्रोही स्वभाव की है। लेकिन दरिद्रता एवं लड़ाई-झगड़े में भी प्रेमचंद ने धनिया एवं होरी के बीच प्रेम दिखाया है, जो आत्मसमर्पण वाला प्रेम है। सच्चे प्रेम की कसौटी आज भी आत्मसमर्पण है।

प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में वेश्याओं की स्थिति को भी मार्मिक ढंग से चित्रित किया है। सेवासदन में उस भंयकर सामाजिक दोष का चित्रण किया गया है जिससे विवश होकर हमारी कन्यायें वेश्या बन जाती है। प्रेमचन्द ने सुधारवादी हल निकालते हुए स्पष्ट कर दिया था कि वेश्या विधाता की ओर से बनकर नहीं आती है अपितु यह निष्ठुर समाज ही वेश्या बनने पर मजबूत करता है। किन्तु दु:ख की बात है कि आज के आधुनिक समाज में एक वर्ग पश्चिमी देशों से प्रभावित होकर तथा जल्दी से जल्दी अमीर बनने की तीव्र लालसा के कारण वेश्यावृत्ति को धंधे के रूप में स्वेच्छा से भी स्वीकार कर रही है।

धर्म एवं साम्प्रदायिकता

प्रेमचन्द स्वभाव से आस्तिक थे लेकिन वह अपने निजी अनुभव से जीवन की अंतिम घड़ियों में नास्तिक बन गए थे। वे जनसाधारण के धार्मिक विश्वास का आदर करते थे क्योंकि वे जानते थे कि शोषित जनता के पास एक धर्म ही तो है जो इन्हें भीषण दरिद्रता में भी जीने का बल प्रदान करता है। लेकिन वे धर्म के नाम पर जनसाधारण की लूट-खसोट करने वाले ढोंगी ब्राह्मणों का खूब मज़ाक उड़ाते हैं। 'मोटेराम शास्त्री' ऐसे ही लोगों के प्रतिनिधि हैं।

साम्प्रदायिकता आज के आधुनिक समाज एक बहुत बड़ी समस्या बन गई है जो विकास मार्ग का अवरोधक बन गया है। यह समस्या प्रेमचन्द के युग में भी थी जिसका फायदा अंग्रेजों ने उठाया था और 'फूट डालो और शासन करो' इस नीति का अनुसरण करके हम पर रास किया। प्रेमचन्द का मानना है कि आर्थिक स्वार्थ ही साम्प्रदायिकता का मूल कारण है। 'धर्म खतरे में है' और 'संस्कृति खतरे में है' का नारा तो दरअसल भोली भाली जनता को ठगने के लिए लगाया जाता है। 'सेवासदन' में वेश्याओं को दालमण्डी से उठाने का सवाल उठता है तो नगरपालिका के सदस्यों का इसके पक्ष-विपक्ष में होना इस बात पर निर्भर था कि दालमंडी में किसके कितने मकान हैं और किसे इससे कितनी आर्थिक हानि होती है। आज भी इस आधुनिक युग में साम्प्रदायिकता का इस्तेमाल पार्टियां अपने-अपने फायदे के लिए कर रही है। जो काम अंग्रेजों ने किया था वही काम आज हिंदू-मुसलमान को बांटकर वोट की राजनीति आमप के आधुनिक युग की पार्टियां कर रही हैं। वह राष्ट्र विकास में ही बाधक नहीं है अपितु व्यक्तिगत विकास एवं सहयोग का भी सबसे बड़ा कारण है।

अंत में हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द साहित्य को केवल मनोरंजन एवं विलासिता का वस्तु नहीं समझते थे। इसे सामाजिक उत्थान की कसौटी मानते थे। निःसंदेह साहित्य मानवीय जीवन को सुसंस्कृत एवं परिष्कृत करने का सशक्त माध्यम और मार्गदर्शक है। सामाजिक उत्थान में साहित्यकार का दायित्व बहुविध, अप्रमेय एवं असीमित है। किन्तु वर्तमान परिस्थितियों में सामाजिक समस्याओं के निवारण के लिए वर्तमान साहित्यकारों को मात्र धन एवं वैभव के पीछे न भागते हुए इसके

मूल कारण एवं व्यवहारिक उपाय खोजने चाहिए लेकिन इसके लिए समाज एवं सरकार को भी चाहिए कि इन्हें पर्याप्त संरक्षण एवं सम्मान दे। आज के साहित्यकार भी प्रेमचन्द के समान आदर्श एवं यथार्थ के बीच सामंजस्य स्थापित करके सामाजिक क्रांति ला सकते हैं जिससे 'सुराज्य' के आदर्श को प्राप्त किया जा सकता है। जिस दिन सुराज्य का आदर्श प्राप्त हो जाएगा उस दिन प्रेमचन्द अप्रासंगिक हो जाएंगे और यही उनकी प्रति हमारी सच्ची श्रद्धाजंलि होगी।

प्रवक्ता

संस्कृत विभाग,

कश्मीर विश्वविद्यालय,

श्रीनगर